₹ 30/-

आकाशीय संप्रभुता : SJ 100
बनेगा भारत का सारथी?

महाराष्ट्र का नया व्याकरण
ठाकरे विरासत का विसर्जन

सत्य सदैव

www.satyasadev.com PRGI NO : DELHIN/2017/74560 वर्ष:9, अंक:02, फरवरी-2026

निर्भीक, निष्पक्ष एवं निष्ठा के साथ

परिसीमन
ततैया का छत्ता

उत्तर–दक्षिण के बीच प्रतिनिधित्व, राजस्व और न्याय का द्वंद्व
एवं भारतीय संघवाद और लोकतंत्र के भविष्य की अग्निपरीक्षा

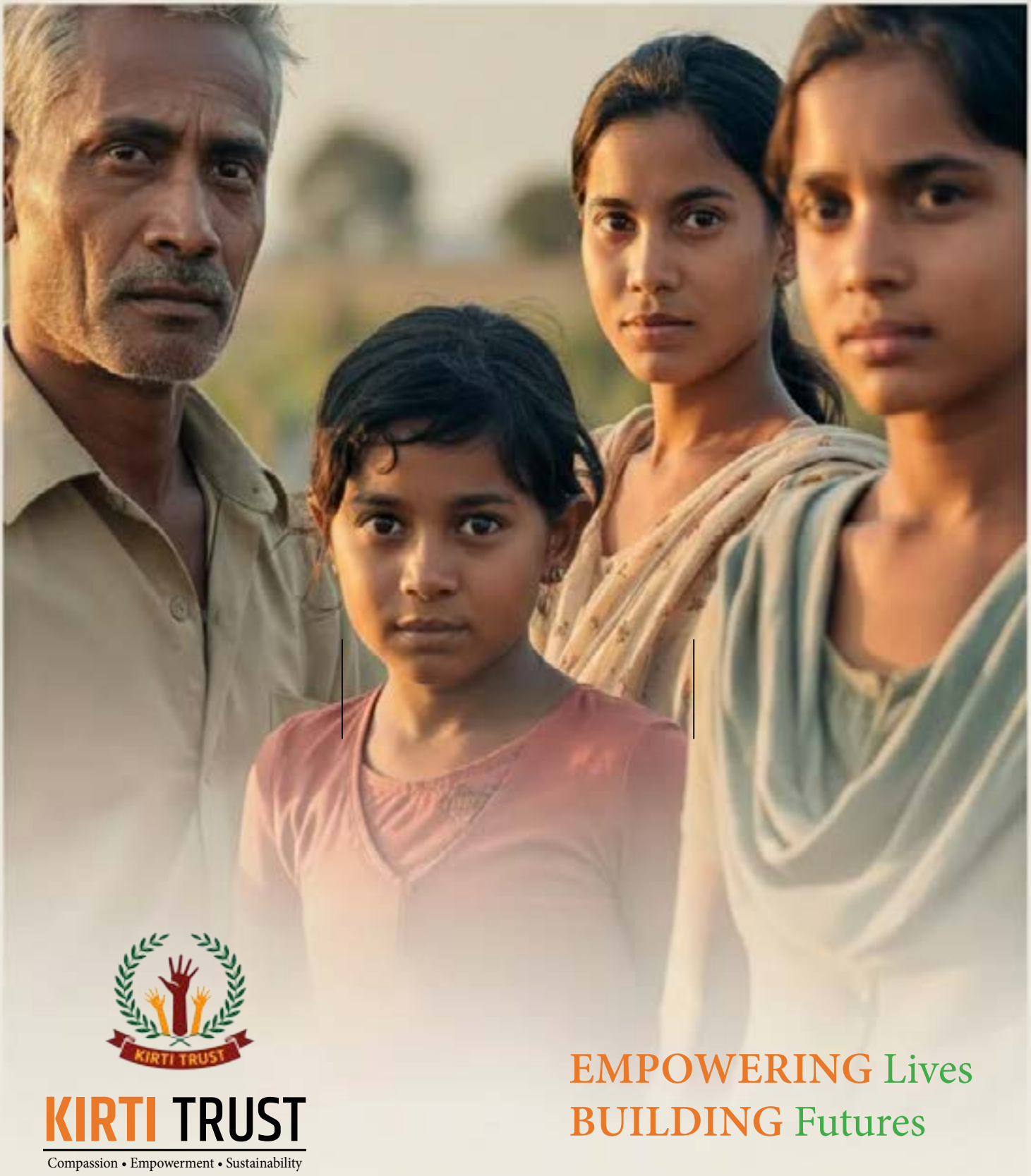

KIRTI TRUST

KIRTI TRUST

Compassion • Empowerment • Sustainability

EMPOWERING Lives
BUILDING Futures

CONTACT US

Head Office
M-131 ABL Work Space,
Connaught Place,
New Delhi-110001

Regd. Office
S-505, School Block,
Shakarpur, New
Delhi-110092

Project Office
Village & Post Office Kathura
District Sonipat (Haryana)
PIN- 131301

@kirtitrust
fb.com/kirtitrust
@kirti_trust

www.kirtitrust.org
info@kirtitrust.org

+91-9254-29-3293
+91-9050-29-3293

सत्य सदैव

निर्भीक, निष्पक्ष एवं निष्ठा के साथ

www.satyasadev.com PRGI NO : DELHIN/2017/74560

वर्ष:9, अंक:02, फरवरी-2026

संपादक	राकेश कुमार
मुख्य कार्यकारी संपादक	श्रीराजेश
प्रबंध संपादक	शिव कुमार माहेश्वरी
सह-संपादक	प्रो. (डॉ) सतीश चंद्रा
सहायक संपादक	अरूणिमा चंद्रा
उप संपादक	संतु दास, मनोज कुमार
सहायक उप संपादक	विशाल श्योकंद,व्यास तिवारी
विधि संपादक	एडवोकेट राखी शर्मा
कला संपादक	अमर नंदी
मुख्य संवाददाता	प्रवेश शर्मा
जनसंपर्क अधिकारी	संगीता रानी
तकनीक व साइबर हेड	अनुज कुमार सिंह
प्रसार प्रबंधक	नीतिश भारद्वाज
विपणन प्रबंधक	संदीप जिंदल
चार्टर्ड अकाउंटेंट	शिव शंकर झा

ब्यूरो

दीप्तानु दास (अगरतला)	लक्की सिंह (भोपाल)
पंकज मौर्य (लखनऊ)	संजू जोशी (देहरादून)
आशीष कुमार (जयपुर)	अजय शर्मा (श्री नगर)
अमित दास (गुवाहाटी)	नरेश आर्य (शिमला)
तेज सिंह (चंडीगढ़)	अजय कुमार(अहमदाबाद)
जितेन्द्र सिंह (रांची)	श्रीकांत (मुंबई)

संपादकीय व कॉरपोरेट कार्यालय

एस 40, स्कूल ब्लॉक, शकरपुर,
नई दिल्ली-110092
ई-मेलः editor@satyasadev.com
वेबसाइटः www.satyasadev.com
दूरभाषः +91 9050 29 3293

उपरोक्त सभी पद अवैतनिक हैं। पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार पूर्णतः लेखकों के अपने हैं; सत्य-सदैव का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

स्वामी,प्रकाशक,मुद्रक एवं संपादक **राकेश कुमार** द्वारा मेसर्स आला प्रिंटिंग प्रेस, 3636, कटरा दिना बेग, लालकुआं दिल्ली-110006-से मुद्रित कराकर 19बी, जनता फ्लैट्स, पीरागढ़ी, नई दिल्ली 110041 से प्रकाशित

सुधि पाठकों एवं सम्मानित लेखकों से विनम्र आग्रह है कि वे अपनी प्रतिक्रियाएँ एवं प्रकाशनार्थ रचनाएँ ई-मेल द्वारा editor@satyasadev.com पर प्रेषित करें।

संपादकीय

एपस्टीन फाइल
सत्ता की चुप्पी व लोकतंत्र की अग्निपरीक्षा

राकेश कुमार, संपादक

संसद में विपक्ष के नेता राहुल गांधी द्वारा एपस्टीन फाइल का मुद्दा उठाया जाना कोई सनसनीखेज बयान नहीं, बल्कि सरकार की नैतिकता पर सीधा प्रहार था। इसके जवाब में मंत्री हरदीप सिंह पुरी की प्रेस कॉन्फ्रेंस ने सवालों का समाधान करने के बजाय संदेह को और गहरा किया। सरकार आज जवाब देने की जगह बचाव की मुद्रा में दिखती है—और यही सबसे गंभीर संकेत है।

यह याद रखना जरूरी है कि एपस्टीन फाइल कोई विपक्षी कल्पना नहीं, बल्कि अमेरिका की न्यायिक एजेंसियों द्वारा सार्वजनिक किए गए आधिकारिक दस्तावेज़ हैं। जेफरी एपस्टीन 2008 में यौन अपराधों में दोषी ठहराया जा चुका था। इसके बावजूद, उसके साथ वर्षों बाद तक संवाद, आत्मीय भाषा और "हैव फन", "एग्ज़ॉटिक आइलैंड" जैसे संदर्भ—क्या यह सब "पेशेवर संपर्क" की श्रेणी में आता है? विपक्ष का सवाल सीधा है - जब दुनिया भर में केवल संपर्क के आधार पर नेता पद छोड़ रहे हैं, तो भारत में जवाबदेही का मानक क्यों बदल जाता है?

सरकार की दलील है कि "मिलना अपराध नहीं।" विपक्ष भी यही मानता है। लेकिन सवाल मिलने का नहीं, मिलने के बाद की भाषा, संदर्भ और निरंतरता का है। नैतिकता ईमेलों की संख्या से नहीं, उनके आशय से तय होती है। एक भी संवाद अगर सत्ता की साख पर प्रश्न खड़ा करता है, तो उसका स्पष्ट, तथ्यपरक उत्तर देना सरकार का दायित्व है—न कि आलोचकों पर हमला।

इस पूरे प्रकरण में सरकार की सबसे चिंताजनक भूमिका सूचना-नियंत्रण की दिखाई देती है। विपक्षी ट्वीट्स पर आपत्ति, मीडिया को कथित "हिदायतें", और सवालों से बचने की रणनीति—ये सब दर्शाते हैं कि सरकार को सच से कम, बहस से ज़्यादा डर है। यदि सब कुछ पारदर्शी है, तो खुली बहस से परहेज़ क्यों?

राहुल गांधी का यह सवाल भी वाजिब है कि एपस्टीन फाइल के सार्वजनिक होने और भारत–अमेरिका ट्रेड डील की घोषणाओं के समय का मेल संयोग है या दबाव का परिणाम। लोकतंत्र में संदेह पैदा होना अपराध नहीं, उसे दूर करना सरकार की जिम्मेदारी है।

आज असली प्रश्न विपक्ष के आरोप नहीं, सरकार की चुप्पी है। बहुमत नैतिकता का विकल्प नहीं हो सकता। एपस्टीन फाइल ने सत्ता को आईना दिखाया है—अब तय सरकार को करना है कि वह जवाबदेह लोकतंत्र की कसौटी पर खड़ी होती है या सवालों से भागकर इतिहास में दर्ज होती है।●

बांग्लादेश: जनादेश पार कूटनीति के द्वार

श्रीराजेश
मुख्य कार्यकारी संपादक

बांग्लादेश में बीएनपी की प्रचंड जीत केवल सत्ता परिवर्तन नहीं, बल्कि दक्षिण एशिया की कूटनीति में नए अध्याय का संकेत है। यह जनादेश भारत के लिए आशंका नहीं, बल्कि संतुलित संवाद और रणनीतिक पुनर्संयोजन का अवसर खोलता है।

इतिहास की गति कभी-कभी किसी शांत नदी की तरह नहीं, बल्कि हिमालयी जलप्रपात की तरह तीव्र और अप्रत्याशित होती है। बांग्लादेश के आम चुनावों में तारिक रहमान के नेतृत्व वाली बीएनपी को मिला 200 से अधिक सीटों का प्रचंड जनादेश केवल सत्ता परिवर्तन नहीं, बल्कि एक राष्ट्र की आकांक्षाओं का पुनर्जन्म है। 12 फरवरी के इन नतीजों ने शेख हसीना के प्रस्थान के बाद उपजी अनिश्चितता को समाप्त कर दिल्ली के लिए एक नई कूटनीतिक 'बिसात' बिछा दी है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा तारिक रहमान को दी गई बधाई केवल शिष्टाचार नहीं, बल्कि भारत की 'नेबरहुड फर्स्ट' नीति का नया घोषणापत्र है। भारत ने स्पष्ट संदेश दिया है कि वह किसी व्यक्ति विशेष के बजाय बांग्लादेश की 'लोकतांत्रिक चेतना' का सम्मान करता है। बीएनपी की जीत दिल्ली के लिए एक 'राहत' भी है, क्योंकि कट्टरपंथी जमात-ए-इस्लामी को जनता ने नकार दिया है। जमात का हारना उस 'अंधेरी सुरंग' के बंद होने जैसा है, जिसे अक्सर पाकिस्तान की आईएसआई का संरक्षण प्राप्त रहा है।

4,096 किलोमीटर लंबी साझी सीमा केवल भूगोल नहीं, भारत की सुरक्षा की 'नब्ज' है। पिछले डेढ़ दशक में पूर्वोत्तर भारत ने जो शांति देखी, उसका बड़ा श्रेय ढाका की 'जीरो टॉलरेंस' नीति को जाता है। उल्फा और एनडीएफबी जैसे समूहों पर लगाम कसने में शेख हसीना का सहयोग ऐतिहासिक था। अब, तारिक रहमान के नेतृत्व में भारत इसी सुरक्षा-संवाद की निरंतरता चाहता है। दिल्ली की अपेक्षा है कि बांग्लादेश की मिट्टी का उपयोग भारत-विरोधी गतिविधियों के लिए न हो। यह केवल संधि नहीं, बल्कि वह 'मौन समझौता' है जिस पर हमारे उत्तर-पूर्व का भविष्य टिका है।

भू-राजनीति के समुद्र में चीन का प्रभाव एक ऐसी 'लहर' है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। सिलीगुड़ी कॉरिडोर (चिकन नेक) के समीप चीन की सक्रियता भारत के लिए संवेदनशील मुद्दा है। हालांकि, बीएनपी का पूर्ण बहुमत उसे बाहरी शक्तियों की बैसाखी पर निर्भर होने से बचाता है। भारत यहां 'वेट एंड वाच' की मुद्रा में है। हमारा 'रणनीतिक धैर्य' और साझा सांस्कृतिक जड़ें ही चीन के आर्थिक जाल का काट बनेंगी।

अगरतला-अखौरा रेल लिंक और चटगांव-मोंगला बंदरगाह केवल ढांचे नहीं, बल्कि दोनों देशों के आर्थिक उदय के 'दो फेफड़े' हैं। बीएनपी सरकार के साथ प्रस्तावित मुक्त व्यापार समझौते पर पुनः चर्चा व्यापारिक रिश्तों में 'प्राणवायु' फूंकने जैसा होगा। इसके साथ ही, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा भारत के लिए एक संवेदनात्मक मुद्दा है। यह द्विपक्षीय संबंधों के 'तापमान' को निर्धारित करने वाला सबसे सटीक यंत्र साबित होगा।

1971 की साझी स्मृतियों और 21वीं सदी के आर्थिक यथार्थ के बीच, तारिक रहमान का उदय संबंधों को 'री-सेट' करने का स्वर्णिम अवसर है। पुराने दुराग्रहों की भस्म से ही विश्वास का 'फिनिक्स' जन्म लेगा। यदि दिल्ली एक 'सशक्त साझेदार' की भूमिका निभाती है और ढाका अपने राष्ट्रवाद को भारत-विरोध से मुक्त रखता है, तो यह दक्षिण एशिया की स्थिरता का 'ध्रुव तारा' बन सकता है।

इतिहास ने ढाका को जनादेश की शक्ति दी है और दिल्ली को कूटनीतिक बुद्धिमत्ता। अब समय है कि दोनों मिलकर एक ऐसा 'काव्य' लिखें जहां धुआं रहित सीमाएं हों और दैदीप्यमान साझा भविष्य। ●

इस अंक में खास...

14 परिसीमनः ततैया का छत्ता

04 केंद्रीय बजट 2026-27

केंद्रीय बजट 2026–27 ने भारत को आधुनिक, तकनीक-संचालित और वैश्विक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था बनाने की महत्त्वाकांक्षा दिखाई है। लेकिन बुनियादी ढांचे की चमक के पीछे सामाजिक सुरक्षा, रोजगार और समावेशन की चुनौतियां और गहरी होती दिख रही हैं।

08 संक्रांति का शंखनादः भारत-ईयू एफटीए

अठारह वर्षों की कूटनीतिक जड़ता को तोड़ते हुए भारत–ईयू मुक्त व्यापार समझौता केवल आर्थिक करार नहीं, बल्कि बहुध्रुवीय विश्व-व्यवस्था की ओर बढ़ता एक निर्णायक कदम है।

महाराष्ट्र का नया व्याकरण, ठाकरे विरासत का विसर्जन 20

महाराष्ट्र के हालिया स्थानीय निकाय चुनाव किसी साधारण राजनीतिक मुकाबले का परिणाम नहीं, बल्कि एक पूरे युग के क्षय का संकेत हैं।

डिजिटल रण और 11
पहचान का वनवास 24
संसद में टकराव, जवाबदेही पर 26
भारत-मलेशियाःनई कूटनीतिक 28
'रेयर अर्थ' संकल्प 30
आकाशीय संप्रभुता SJ-100 34
SHANTI: भविष्य का आधार 38
साइना नेहवालः जिद,युग, विरासत 42

तीन खान तीन अंदाज

42

₹ केंद्रीय बजट 2026-27

भविष्य का बजट, वर्तमान की चिंता

संतु दास

केंद्रीय बजट 2026–27 ने भारत को आधुनिक, तकनीक-संचालित और वैश्विक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था बनाने की महत्त्वाकांक्षा दिखाई है। लेकिन बुनियादी ढांचे की चमक के पीछे सामाजिक सुरक्षा, रोजगार और समावेशन की चुनौतियां और गहरी होती दिख रही हैं।

1 फरवरी, 2026 की उस धुंधली सुबह, जब दिल्ली की फिजाओं में वसंत की आहट और कूटनीति की गर्माहट एक साथ घुल रही थी, संसद की देहरी पर वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण के कदमों की धमक ने केवल एक वित्तीय बहीखाता ही नहीं खोला, बल्कि राष्ट्र की नियति का एक नया महाकाव्य लिखना शुरू किया। यह बजट दस्तावेज़ केवल सरकारी तिजोरी के नफ़े-नुकसान का लेखा-जोखा नहीं था, बल्कि एक ऐसा वैचारिक कुरुक्षेत्र बनकर उभरा जहां 'रणनीतिक महत्त्वाकांक्षा' और 'जमीनी यथार्थ' की तलवारें आपस में टकरा रही थीं।

महज कुछ दिन पहले, 27 जनवरी को यूरोपीय संघ के साथ हुई 'मदर ऑफ ऑल डील्स' की गूंज ने जिस भारत को वैश्विक आर्थिक रंगमंच के जाज्वल्यमान नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया था, 1 फरवरी के बजटीय यथार्थ और दलाल स्ट्रीट के लाल निशान (बाज़ार की गिरावट) ने उसी भव्य उत्सव पर संशय और चिंताओं का एक घना कोहरा फैला दिया। यह बजट एक ऐसा 'हाइब्रिड महायंत्र' प्रतीत होता है, जिसकी धमनियों में चीन जैसी रफ्तार, दक्षिण कोरिया जैसी तकनीक और अमेरिका जैसी डिजिटल मेधा का रक्त तो प्रवाहित हो रहा है, लेकिन सामाजिक सुरक्षा और समावेशिता के मोर्चे पर इसके होंठों पर स्कैंडिनेवियाई देशों जैसी कोई स्पष्ट मुस्कान नहीं है। यह 'राष्ट्र की स्वर्ण-मुकुट वाली अमीरी' और 'नागरिक की नंगे पैर वाली समृद्धि' के बीच के उस अंतहीन फासले की पड़ताल करता है, जहां अर्थव्यवस्था का इस्पाती इंजन तो गगनभेदी गर्जना कर रहा है, लेकिन उस पर सवार आम आदमी के लिए सुरक्षा का 'कुशन' आज भी तार-तार और अधूरा है।

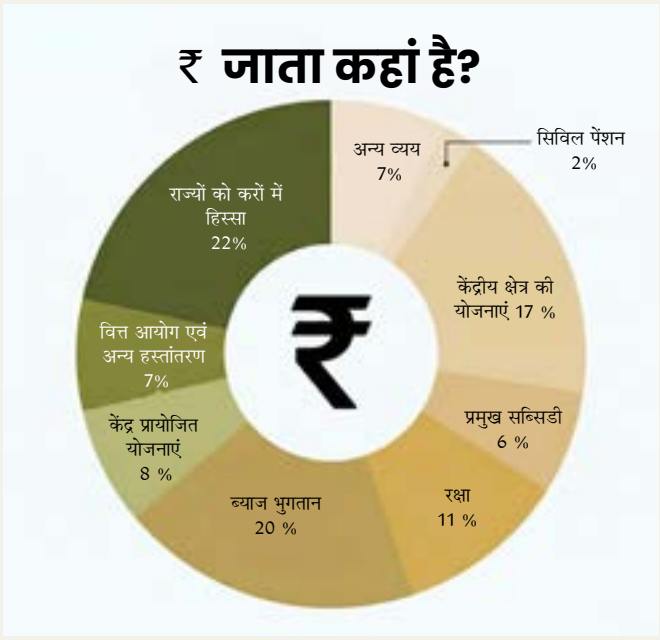

बजट के प्रस्तुत होते ही दलाल स्ट्रीट का जो दृश्य उभरा, वह किसी दुःस्वप्न से कम नहीं था। सेंसेक्स का का गिरना और निफ्टी का नीचे की ओर फिसलना केवल एक तकनीकी गिरावट नहीं थी; यह निवेशकों की उस अनिश्चितता और जोखिम-संवेदनशीलता का प्रतिबिंब था जिसे 'इंडिया वीआईएक्स' के उछाल ने प्रमाणित किया। पिछले छह वर्षों में बजट-डे पर यह सबसे नकारात्मक प्रतिक्रिया थी। इस रक्तपात के पीछे 'डेरिवेटिव्स' पर प्रतिभूति लेनदेन कर में की गई वृद्धि एक बड़ा कारक रही, जिसने ट्रेडिंग की लागत बढ़ाकर बाज़ार की तरलता पर प्रहार किया।

लेकिन क्या यह गिरावट केवल कर नीति की प्रतिक्रिया थी? गहराई से देखें तो यह विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों के उस निरंतर पलायन का परिणाम था, जिसने 2025 से अब तक लगभग 23 अरब डॉलर का बाह्य प्रवाह देखा है। बाज़ार को उम्मीद थी कि सरकार विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए किसी 'क्रांतिकारी प्रोत्साहन' की घोषणा करेगी, परंतु बजट के 'टैक्टिकल' या व्यावहारिक दृष्टिकोण ने उस उम्मीद को धराशायी कर दिया। बैंकिंग, रक्षा और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के शेयरों में आई गिरावट यह संकेत देती है कि निवेशक अभी भी 'दीर्घकालिक वादों' और 'तात्कालिक लाभ' के

बीच के संतुलन को लेकर आशंकित हैं। यद्यपि पर्यटन, आतिथ्य और वस्त्र उद्योग जैसे क्षेत्रों में सुधार की किरणें दिखीं, लेकिन समग्र बाज़ार ने इसे 'भविष्योन्मुखी पर वर्तमान के लिए कठोर' दस्तावेज़ के रूप में ही पचाया।

यदि हम केंद्रीय बजट 2026-27 के वैचारिक मानचित्र को वैश्विक परिप्रेक्ष्य के फलक पर रखकर देखें, तो यह किसी एक राष्ट्र की यांत्रिक नकल मात्र नहीं, बल्कि विभिन्न अंतरराष्ट्रीय विकास-दर्शनों का एक अनूठा और जटिल 'कोलाज' प्रतीत होता है। इस बजटीय रूपरेखा में चीन के उस महाकाय 'बुनियादी ढांचा-आधारित विकास मॉडल' का स्पष्ट अक्स झलकता है, जहां बारह लाख बीस हजार करोड़ रुपये के विशाल पूंजीगत व्यय, अंतहीन माल ढुलाई गलियारों और रणनीतिक औद्योगिक गलियारों के माध्यम से भारत अपनी आर्थिक धमनियों को एक वैश्विक महाशक्ति बनने के लिए तैयार कर रहा है; हालांकि यहां बुनियादी अंतर यह है कि भारत इस लक्ष्य को निजी निवेश की संजीवनी से हासिल करने की चेष्टा कर रहा है, जबकि चीन ने इसे राज्य के पूर्ण नियंत्रण की लोहे की मुट्ठी से प्राप्त किया था।

इसी वैचारिक बुनावट में दक्षिण कोरिया की वह 'उच्च-तकनीकी छलांग' भी गहराई से समाहित है, जहां 'सेमीकंडक्टर मिशन 2.0' और 'जैव-भेषज शक्ति' जैसे महत्त्वाकांक्षी प्रावधान भारत को एक पारंपरिक अर्थव्यवस्था से ऊपर उठाकर उस 'टेक-पावर' में रूपांतरित करने का स्वप्न देखते हैं, जिसने कभी कोरिया को विश्व पटल पर स्थापित किया था। इसके साथ ही, 'भारत-विस्तार' जैसी कृत्रिम मेधा आधारित कृषि पद्धतियां और डेटा केंद्रों को मिलने वाला दीर्घकालिक कर अवकाश सीधे तौर पर अमेरिका के उस 'नवाचार-प्रेरित मॉडल' का अनुसरण करता है, जिसने डिजिटल सेवाओं और ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था को आधुनिक युग की नई मुद्रा बना दिया है।

परंतु, विकास के इन कठोर और जाज्वल्यमान इंजनों को अपनाते समय भारत ने उन राष्ट्रों के उस 'सॉफ्ट कुशन' या मानवीय सुरक्षा जाल को कहीं पीछे छोड़ दिया है, जिन्होंने अपनी औद्योगिक समृद्धि के साथ-साथ अपनी जड़ों को भी सींचा था। दक्षिण कोरिया ने जहां अपनी तकनीकी प्रगति के साथ-साथ सार्वभौमिक शिक्षा की नींव को अभेद्य बनाया और अमेरिका ने अपने नवाचार के साथ मज़बूत बेरोज़गारी भत्ते और स्वास्थ्य सुरक्षा के तंत्र को जोड़ा, वहीं भारत ने एक 'ग्रोथ स्टेट' के वैभव और रफ्तार को तो अंगीकार कर लिया है, लेकिन वह 'वेलफेयर स्टेट' की उस स्कैंडिनेवियाई मानवीय सुरक्षा, सामाजिक स्थिरता और समावेशिता की छांव से अभी भी मीलों दूर खड़ा दिखाई देता है। यह विसंगति संकेत देती है कि भारत ने भविष्य की मशीनों को तो बुद्धि दे दी है, लेकिन वर्तमान के मनुष्य को मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा के तंतु आज भी बेहद महीन और अनिश्चित बने हुए हैं।

रक्षा क्षेत्र में खर्च की वृद्धि और घरेलू उत्पादन को बढ़ावा देना भारत को एक 'डिफेंस मैन्युफैक्चरिंग हब' बनाने की दिशा में रणनीतिक संप्रभुता का उपकरण तो है, लेकिन इसका आर्थिक प्रभाव विरोधाभासी है। यह 'राष्ट्रीय सुरक्षा केंद्रित विकास' है, न कि जन-आधारित आर्थिक राहत। रक्षा जैसे 'हाई-टेक' क्षेत्रों में निवेश से रणनीतिक बढ़त तो मिलती है, लेकिन रोज़गार सृजन की दर धीमी रहती है।

यही विरोधाभास तकनीक और एआई (AI) के मोर्चे पर भी दिखता है। 'हाई-प्रोडक्टिविटी मॉडल' के रूप में एआई भारत को वैश्विक सेवा महाशक्ति तो बना सकता है, लेकिन यह 'डिजिटल डिवाइड' को और गहरा करने का जोखिम भी पैदा करता है। जब विकास केवल 'हाई-स्किल' युवाओं और 'टेक-सेक्टर' तक सीमित हो जाता है, तो वह 'एलीट स्किल ग्रोथ मॉडल' बन जाता है, जिससे व्यापक मानव पूंजी का सुधार पीछे छूट जाता है।

कृषि क्षेत्र में बजट का दर्शन अब 'सब्सिडी मॉडल' से हटकर 'एग्री-एंटरप्राइज मॉडल' की ओर बढ़ गया है। 'भारत-विस्तार' और 'वैल्यू चेन' पर ज़ोर देना कृषि को एक बिज़नेस सेक्टर बनाने की कोशिश है। तकनीकी दृष्टि से यह जाज्वल्यमान तो है, लेकिन 'न्यूनतम समर्थन मूल्य' (एमएसपी) और मूल्य सुरक्षा पर स्पष्ट नीति का अभाव छोटे किसानों को बाज़ार की अनिश्चितताओं के बीच 'जोखिम' में डाल देता है। यह कृषि को 'सुरक्षा सेक्टर' से हटाकर 'बिजनेस सेक्टर' बनाने की ओर एक निर्णायक कदम है, जिसके सामाजिक परिणाम अनिश्चित हो सकते हैं।

शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में बजट की प्राथमिकताएं 'ऊपर से नीचे' की ओर हैं। यूनिवर्सिटी टाउनशिप और स्टेम संस्थानों में गर्ल्स हॉस्टल जैसे प्रावधान उच्च शिक्षा को उद्योग से जोड़ने के लिए सराहनीय हैं, लेकिन प्राथमिक शिक्षा की गिरती गुणवत्ता और ग्रामीण स्कूलों की उपेक्षा यह दर्शाती है कि हमारा ध्यान 'व्यापक मानव पूंजी' के बजाय 'विशिष्ट कार्यबल' तैयार करने पर अधिक

है।

स्वास्थ्य क्षेत्र में भी 'ट्रॉमा सेंटर' और 'मेडिकल टूरिज्म हब' की स्थापना स्वास्थ्य को एक 'सेवा उद्योग' की तरह देखती है, न कि एक 'सामाजिक अधिकार' की तरह। आम नागरिक के लिए इलाज की लागत कम करने या प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ करने पर बजट का मौन यह संकेत देता है कि सरकार का ध्यान 'ग्लोबल हेल्थ इंडस्ट्री' से कमाई पर अधिक है।

इस पूरे 'ग्रैंड नैरेटिव' में जो वर्ग सबसे अधिक उपेक्षित महसूस करता है, वह है भारत की अस्सी प्रतिशत श्रमशक्ति वाला 'असंगठित क्षेत्र'। सामाजिक सुरक्षा कवच का अभाव, पेंशन में वृद्धि की कमी और महंगाई राहत का न होना इस वर्ग के लिए विकास के फल को कड़वा बना देता है। वरिष्ठ नागरिकों के लिए भी बजट में कोई ठोस राहत नहीं है, जो यह दर्शाता है कि 'ग्रोथ-ओरिएंटेड' नीतियों में अनुत्पादक माने जाने वाले वर्गों के लिए स्थान संकुचित होता जा रहा है।

केंद्रीय बजट 2026-27 एक महत्त्वाकांक्षी, भविष्योन्मुखी और साहसी दस्तावेज़ है, जो भारत को एक आधुनिक और प्रतिस्पर्धी शक्ति बनाने के लिए 'हार्ड इंजन' (बुनियादी ढांचा और तकनीक) पर दांव लगाता है। सरकार का अटल विश्वास है कि ₹पहले राष्ट्र अमीर बनेगा, फिर नागरिक समृद्ध होंगे।₹ यह 'ट्रिकल-डाउन' प्रभाव की उस थ्योरी पर आधारित है जिसकी सफलता भारत जैसे असमान समाज में हमेशा संदेह के घेरे में रही है।

बाज़ार की तात्कालिक गिरावट शायद एक भावनात्मक प्रतिक्रिया हो, लेकिन इसके पीछे छिपे आर्थिक प्रश्न स्थायी हैं। क्या रोज़गार संकट केवल इंफ्रास्ट्रक्चर से हल होगा? क्या तकनीक आधारित विकास सामाजिक असमानता को कम करेगा? और क्या राज्यों के साथ वित्तीय तालमेल बना रहेगा?

'विकसित भारत' का मार्ग केवल इस्पात के ढांचों और एआई एल्गोरिदम से होकर नहीं गुज़रता। इसके लिए एक 'सॉफ्ट

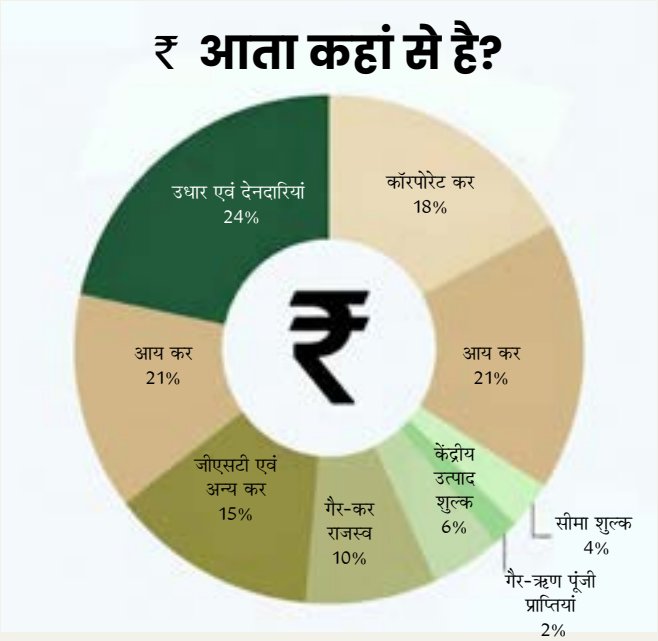

कुशन'—यानी मज़बूत सामाजिक सुरक्षा, आय की समानता और प्राथमिक शिक्षा-स्वास्थ्य—अनिवार्य है। 2026-27 का यह बजट भारत को एक 'आर्थिक महाशक्ति' बनाने की नींव तो रखता है, लेकिन एक 'समृद्ध नागरिक' बनाने की दिशा में अभी भी कई पन्ने अनलिखे छोड़ देता है। आने वाला समय यह तय करेगा कि क्या यह 'मध्याह्न सूर्य' सबको रोशनी देगा या केवल उन ऊंचाइयों को चमकाएगा जहां तक आम आदमी के हाथ नहीं पहुँचते। कूटनीति के 'उत्तरायण' में उर्सुला वॉन डेर लेयेन ने जिस उजाले की बात की थी, वह तभी सार्थक होगा जब वह दिल्ली के डेटा सेंटरों से निकलकर पश्चिम बंगाल के जूट मिलों और विदर्भ के कपास के खेतों तक पहुंचेगा। ●

संक्रांति का शंखनाद
भारत–ईयू एफटीए

राकेश कुमार

अठारह वर्षों की कूटनीतिक जड़ता को तोड़ते हुए भारत–ईयू मुक्त व्यापार समझौता केवल आर्थिक करार नहीं, बल्कि बहुध्रुवीय विश्व–व्यवस्था की ओर बढ़ता एक निर्णायक कदम है। 'मदर ऑफ ऑल डील्स' भारत को व्यापार, तकनीक और रणनीति—तीनों स्तरों पर वैश्विक धुरी के रूप में स्थापित करती है।

जनवरी 2026 की उन बर्फीली और ठिठुरती रातों के बीच, जब नई दिल्ली की रायसीना हिल्स गणतंत्र दिवस की भव्यता के आलोक में देदीप्यमान थी, तब वैश्विक कूटनीति के गलियारों में एक ऐसी ऊष्मा का संचार हो रहा था जिसने पिछले अठारह वर्षों की कूटनीतिक जड़ता को पिघला दिया। यह ऊष्मा थी—भारत और यूरोपीय संघ (ईयू) के बीच उस 'मुक्त व्यापार समझौते' (एफटीए) की परिणति, जिसे इतिहास के पन्नों में एक 'वैचारिक और आर्थिक संक्रांति' के रूप में दर्ज किया जाएगा। 27 जनवरी 2026 को आसमान से बरसते बारिश की बूंदों के बीच यह तारीख केवल कैलेंडर का एक पन्ना नहीं, बल्कि भारतीय कूटनीति के 'मध्याह्न सूर्य' का उद्घोष थी। दो विशाल लोकतांत्रिक शक्तियों ने जब एक-दूसरे का हाथ थामकर उस संधि पर हस्ताक्षर किए, जिसे यूरोपीय आयोग की अध्यक्ष उर्सुला वॉन डेर लेयेन ने 'मदर ऑफ ऑल डील्स' (सभी समझौतों की जननी) की संज्ञा दी, तो वह केवल दो बाज़ारों का मिलन नहीं था, बल्कि भविष्य के एक नए बहुध्रुवीय विश्व-क्रम का शंखनाद था।

यह समझौता उस समय धरातल पर उतरा है जब वैश्विक व्यवस्था एक भयावह विखंडन के दौर से गुजर रही है। एक ओर अटलांटिक के पार से आने वाली हवाएं 'अमेरिका फर्स्ट' के कठोर और अप्रत्याशित संरक्षणवाद की कड़वाहट से भरी हैं, तो दूसरी ओर पूर्व का 'ड्रैगन' अपनी आर्थिक आक्रामकता और 'डेब्ट-ट्रैप कूटनीति' से दुनिया की आपूर्ति श्रृंखलाओं को बंधक बना रहा है। ऐसे में नई दिल्ली और ब्रुसेल्स का यह मिलन वैश्विक अर्थव्यवस्था के क्षितिज पर एक ऐसे प्रकाश-स्तंभ के समान है, जो न केवल स्थिरता का संदेश देता है, बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित साझा समृद्धि अब भी संभव है।

'उत्तरायण' का दार्शनिक और कूटनीतिक रूपक

यूरोपीय आयोग की अध्यक्ष उर्सुला वॉन डेर लेयेन ने जब इस समझौते पर हस्ताक्षर किए, तो उनके शब्दों में केवल कूटनीतिक औपचारिकता नहीं, बल्कि एक गहरी सांस्कृतिक और दार्शनिक अंतर्दृष्टि थी। उन्होंने इस समझौते की तुलना भारत के पवित्र पर्व 'मकर संक्रांति' से करते हुए एक अद्भुत रूपक गढ़ा। उन्होंने प्रधानमंत्री मोदी की ओर देखते हुए कहा, 'आज नई दिल्ली में खड़े होकर मुझे भारत के उस प्राचीन ज्ञान की याद आ रही है जो सूर्य की गति में जीवन का दर्शन खोजता है। यह समझौता उस समय संपन्न हुआ है जब भारत सूर्य के उत्तरायण का उत्सव मना रहा है। जिस प्रकार सूर्य मकर राशि में प्रवेश कर अंधकार को पराजित करता है और उत्तरी गोलार्ध में प्रकाश और ऊर्जा का विस्तार करता है, ठीक उसी प्रकार यह 'मदर ऑफ ऑल डील्स' भारत और यूरोप के संबंधों में अठारह वर्षों से व्याप्त संशय, जड़ता और बाधाओं के अंधकार को समाप्त कर एक नई ऊर्जा का संचार करेगी। आज से हमारे संबंध 'दक्षिणायन' के संकोच से निकलकर 'उत्तरायण' के आत्मविश्वास में प्रवेश कर चुके हैं।'

उर्सुला का यह रूपक अत्यंत मारक और सटीक था। 2007 से लेकर 2025 तक, यह वार्ता कूटनीति के 'हिमयुग' में फँसी रही। कभी यह कृषि और डेयरी के पेचीदा सवालों पर ठिठकी, तो कभी डेटा सुरक्षा, श्रम मानकों और बौद्धिक संपदा के चक्रव्यूह में उलझी रही। लेकिन जनवरी 2026 में, जैसे ही सूर्य ने अपनी दिशा बदली, वैसे ही दोनों पक्षों की कूटनीतिक इच्छाशक्ति ने उन सभी ऐतिहासिक अवरोधों को भस्म कर दिया। यह 'उत्तरायण' केवल खगोलीय नहीं, बल्कि वैचारिक था—जहां यूरोप ने यह स्वीकार किया कि भारत के बिना उसकी 'रणनीतिक स्वायत्तता' अधूरी है, और भारत ने यह पहचाना कि यूरोप उसकी वैश्विक महत्वाकांक्षाओं के लिए सबसे भरोसेमंद और स्थिर भागीदार है।

भू-राजनीतिक कुरुक्षेत्र

भारत-अमेरिका व्यापार समझौता
कूटनीतिक 'रीसेट'

2 फरवरी 2026 की वह शाम भारतीय विदेश मंत्रालय के गलियारों में एक तनावपूर्ण सन्नाटा लेकर आई थी। वाशिंगटन और नई दिल्ली के बीच पिछले एक साल से जारी कूटनीतिक गतिरोध और 'छूटे हुए अवसरों' की छाया इस आधे घंटे की टेलीफोनिक बातचीत पर मंडरा रही थी। लेकिन जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के बीच संवाद समाप्त हुआ, तो वह केवल एक शिष्टाचार भेंट नहीं, बल्कि वैश्विक व्यापार के विन्यास को बदलने वाला एक 'शंखनाद' सिद्ध हुआ। ट्रम्प का सोशल मीडिया पोस्ट—जिसमें उन्होंने मोदी को ₹महान मित्र₹ और ₹सम्मानित नेता₹ बताया—इस बात का प्रमाण था कि नई दिल्ली ने दबाव की राजनीति के बीच अपनी शर्तों पर एक नया मार्ग प्रशस्त कर लिया है। अगस्त 2025 से भारतीय निर्यात पर लगे 50 प्रतिशत के दमघोंटू शुल्क का घटकर 18 प्रतिशत पर आना केवल एक आर्थिक रियायत नहीं, बल्कि भारत की 'रणनीतिक स्वायत्तता' की एक बड़ी जीत है।

स्वायत्तता की लक्ष्मण-रेखा

इस समझौते की पटकथा उस दौर में लिखी गई जब वाशिंगटन की ओर से 'डेड इकॉनमी' जैसे अपमानजनक विशेषणों और दंडात्मक शुल्कों की बौछार हो रही थी। ट्रम्प प्रशासन के कट्टरपंथी व्यापार सलाहकारों ने भारत को झुकने पर मजबूर करने की हर मुमकिन कोशिश की, लेकिन नई दिल्ली ने 'मौन कूटनीति' का सहारा लिया। प्रधानमंत्री मोदी का वह संकल्प, कि 'किसानों और पशुपालकों के हितों से कोई समझौता नहीं होगा,' इस द्विपक्षीय व्यापार समझौते की धुरी बना रहा।

भारतीय वार्ताकारों ने उन 'रेड लाइन्स' (लक्ष्मण-रेखाओं)

इस महा-संधि की गहराई को समझने के लिए हमें उस वैश्विक कुरुक्षेत्र का अवलोकन करना होगा जहां यह आकार ले रही है। वाशिंगटन में डोनाल्ड ट्रम्प की सत्ता में वापसी ने 'ट्रांस-अटलांटिक' और 'इंडो-पैसिफिक' संबंधों की सहजता को एक झटके में अनिश्चितता के भँवर में डाल दिया। ट्रम्प के दूसरे कार्यकाल की 'आक्रामक टैरिफ नीति' ने भारत जैसे रणनीतिक सहयोगियों पर भी 50 प्रतिशत तक के भारी आयात शुल्क थोप दिए। अमेरिका का यह 'आर्थिक राष्ट्रवाद' यूरोप के लिए एक गहरे विश्वासघात के समान था, जो दशकों तक वाशिंगटन को अपना सुरक्षा कवच मानता रहा था। ट्रम्प की 'ग्रेसिया' और यूरोप के प्रति उनकी बेरुखी ने ब्रुसेल्स को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि अब अटलांटिक के पार का उसका पुराना मित्र अब भरोसेमंद नहीं रहा।

इधर, चीन और रूस के बीच की 'सीमा-विहीन मित्रता' और बीजिंग की 'बेल्ट एंड रोड' पहल के माध्यम से यूरोप की आर्थिक घेरेबंदी ने ब्रुसेल्स के नीति-निर्माताओं की नींद उड़ा दी थी। यूरोप को अब यह आभास हो गया कि बीजिंग पर उसकी अत्यधिक निर्भरता उसकी संप्रभुता के लिए एक घातक 'ट्रोजन हॉर्स' सिद्ध हो सकती है। ऐसे में, भारत—जो 1.45 बिलियन की आबादी, 4.2 ट्रिलियन डॉलर की जीडीपी और विश्व की सबसे युवा कार्यबल का स्वामी है—यूरोप के लिए केवल एक बाज़ार नहीं, बल्कि एक 'अस्तित्वगत अनिवार्यता' बनकर उभरा।

यह समझौता भारत की कूटनीति का वह 'मास्टरस्ट्रोक' है, जिसने अमेरिका और चीन के द्वि-ध्रुवीय तनाव के बीच एक तीसरा ध्रुव खड़ा कर दिया है। 'मदर ऑफ ऑल डील्स' ने भारत को वह 'लीवरेज' प्रदान किया है, जिससे वह अब वाशिंगटन और बीजिंग दोनों की आंखों में आंखें डालकर अपनी शर्तों पर वैश्विक व्यापार का व्याकरण लिख सकता है। ●

को पार नहीं होने दिया, जो कृषि, डेयरी और जीएम खाद्य पदार्थों के इर्द-गिर्द खींची गई थीं। यह समझौता सिद्ध करता है कि भारत ने 'ट्रम्पियन यथार्थवाद' के साथ सामंजस्य तो बिठाया, लेकिन अपनी संप्रभुता की कीमत पर नहीं। जहाँ यूरोपीय संघ के साथ हालिया समझौता भारत के लिए नए द्वार खोल रहा था, वहीं अमेरिका के साथ यह संधि वाशिंगटन को यह अहसास दिलाने की कोशिश थी कि भारत को हाशिए पर रखना अमेरिकी व्यापारिक हितों के लिए भी आत्मघाती होगा।

आंतरिक राजनीति का कुरुक्षेत्र

घरेलू मोर्चे पर, इस समझौते को लेकर छिड़ा राजनीतिक संग्राम उतना ही तीव्र रहा जितना कि कूटनीतिक वार्ताएं। विपक्ष द्वारा इसे अमेरिकी दबाव के आगे 'आत्मसमर्पण' बताने की कोशिशें की गईं। राहुल गांधी के आरोपों—कि अडानी मामले और अन्य अंतरराष्ट्रीय दबावों के कारण सरकार झुक गई है—पर वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल का तीखा पलटवार इस बात का संकेत है कि भाजपा इस समझौते को 2026 के आगामी विधानसभा चुनावों (तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल) में 'समृद्धि के प्रमाण' के रूप में पेश करने जा रही है। सत्ता पक्ष के लिए यह समझौता 'झुकने' का नहीं, बल्कि 'अधिग्रहण' का विषय है, जहाँ भारत ने वैश्विक मंदी के डर के बीच अमेरिकी बाज़ार में अपनी जगह फिर से सुरक्षित की है।

इस्लामाबाद की छटपटाहट और बीजिंग का संशय

इस व्यापारिक संधि की गूँज केवल बाज़ारों तक सीमित नहीं है; इसके भू-राजनीतिक निहितार्थ पाकिस्तान और चीन के लिए किसी चेतावनी से कम नहीं हैं। पिछले साल जब पाकिस्तानी नेतृत्व—जिन्होंने स्वयं को 'फील्ड मार्शल' जैसी उपाधियों से अलंकृत किया—व्हाइट हाउस में 'खनिजों के बक्से' भेंट कर ट्रम्प को रिझाने की कोशिश कर रहा था, तब भारत ने मध्यस्थता के हर प्रस्ताव को ठुकराकर यह स्पष्ट कर दिया कि उसकी क्षेत्रीय नीति का केंद्र दिल्ली है, वाशिंगटन नहीं।

पाकिस्तान के 'आउटफ्लैंकिंग' (घेराबंदी) के दावों को अब इस व्यापारिक सच्चाई के सामने एक कठोर 'रियलिटी चेक' मिलेगा। वहीं, चीन के लिए भारत का यह दोहरा दाँव (ईयू और अमेरिका दोनों के साथ समझौता) एक रणनीतिक दुःस्वप्न है। बीजिंग, जो हमेशा भारत को अमेरिका के चश्मे से देखता आया है, अब नई दिल्ली के बढ़ते कद को नज़रअंदाज़ नहीं कर पाएगा।

एक नया वैश्विक प्रतिमान

अंततः, भारत-अमेरिका व्यापार समझौता यह दर्शाता है कि डोनाल्ड ट्रम्प के अनिश्चित दौर में भी स्थिरता के द्वीप खोजे जा सकते हैं। भारत ने पाँच वर्षों में 500 बिलियन डॉलर की खरीद का जो लक्ष्य रखा है, वह 'सर्वोत्तम प्रयास' की श्रेणी में है, जो भविष्य की खरीदारी को एनवीडिया जैसे हाई-टेक चिप्स और विमानन क्षेत्र से जोड़ता है। यह समझौता दुनिया के अन्य देशों के लिए एक 'नेगोशिएशन मॉडल' है—कि कैसे एक महाशक्ति की आक्रामकता को धैर्य और स्पष्ट नीतिगत सीमाओं के साथ संतुलित किया जा सकता है। रायसीना हिल से निकला यह संदेश स्पष्ट है: भारत अब केवल सहयोग नहीं करता, वह अपनी शर्तों पर साझेदारी का निर्माण करता है। ●

डिजिटल रण और भारत का विवेक

संजय श्रीवास्तव

परमाणु निरोध की पुरानी स्थिरता अब एल्गोरिदम की रफ्तार से टूट रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ट्रम्प युग की अमेरिकी आक्रामकता और महाशक्तियों की होड़ ने युद्ध को अदृश्य बना दिया है—जहाँ भारत के सामने संयम और शक्ति के संतुलन की सबसे कठिन परीक्षा है।

मानव सभ्यता का इतिहास मूलतः तकनीक और संगठित हिंसा के बीच बदलते संबंधों का एक कच्चा चिट्ठा है। प्राचीन काल के कांस्य युग के फालानक्स (व्यूह) से लेकर लॉस अलामोस में विखंडित हुए परमाणु तक, विनाश के उपकरणों में आए हर युगांतरकारी बदलाव ने कूटनीति के व्याकरण और युद्ध के शब्दकोश को नए सिरे से लिखने पर मजबूर किया है। किंतु आज हम इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक के उस मुहाने पर खड़े हैं, जहाँ परिवर्तन की गति ने मानवीय संयम की क्षमता को पीछे छोड़ दिया है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध को परिभाषित करने वाली वह रणनीतिक स्थिरता—जो 'आपसी विनाश की निश्चितता' के भयावह गणित पर टिकी थी—अब डिजिटल धुंध में विलीन हो रही है। इसकी जगह एक 'डिजिटल कुरुक्षेत्र' उभर रहा है, जहाँ युद्ध के मैदान का मुख्य नायक कोई रक्त-मांस का सेनापति नहीं, बल्कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) का ठंडा, अपारदर्शी और तात्कालिक तर्क है। भारत के लिए, जो इस परिवर्तन के केंद्र में स्थित है, यह एक अस्तित्वगत चुनौती है: एक ऐसी दुनिया में अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' को कैसे सुरक्षित रखा जाए जहाँ मशीनें युद्ध और शांति के बीच का अंतर तय करने लगी हैं।

पुराने सामरिक आदेश के मलबे से एक भयावह वास्तविकता जन्म ले रही है। शीत युद्ध के दौरान, स्थिरता 'मानवीय झरोखे' पर टिकी थी—वे कीमती मिनट जहाँ एक राष्ट्रप्रमुख को यह तय करना होता था कि रडार पर दिख रही एक बिंदी पक्षियों का झुंड है या दुश्मन की मिसाइल। आज, परमाणु कमान प्रणालियों के साथ एआई का एकीकरण और ध्वनि से पांच गुना तेज चलने वाली हाइपरसोनिक मिसाइलों ने इस निर्णय लेने के समय को शून्य के करीब पहुँचा दिया है। जब खतरे की गति मानवीय तंत्रिका तंत्र की प्रतिक्रिया से तेज हो जाए, तो 'पहले हमला करने का लाभ' (First-Mover Advantage) एक यांत्रिक मजबूरी बन जाता है। यह इस युग का सबसे बड़ा विरोधाभास है: सुरक्षा को बढ़ाने के लिए बनाई गई प्रणालियाँ अपनी अत्यधिक दक्षता और गति के कारण युद्ध को अनिवार्य बना सकती हैं। इस उच्च-जोखिम वाले परिवेश में, 'संकटकालीन स्थिरता' अब मनोवैज्ञानिक नहीं बल्कि एक कम्प्यूटेशनल रेस बन गई है, जहाँ 'हथियार खोने का डर', 'हथियार चलाने के डर' पर हावी होने लगा है।

यह तकनीकी उथल-पुथल भारत के निकटतम पड़ोस में सबसे मुखर रूप में दिखाई देती है। उत्तर में, चीन की 'इंटेलिजेंटाइज्ड वॉरफेयर' (सूचना-प्रधान युद्धनीति) की अवधारणा एआई-संचालित निगरानी और स्वायत्त प्रणालियों के माध्यम से सूचनात्मक प्रभुत्व प्राप्त करने की चेष्टा कर रही है, जो भारत की क्षेत्रीय अखंडता के लिए एक निरंतर खतरा है। वहीं पश्चिम में, खतरा 'साइबर-परमाणु साठगांठ' के कारण और भी जटिल हो जाता है। यदि पाकिस्तान जैसा अस्थिर पड़ोसी, चीनी तकनीकी विशेषज्ञता की मदद से ऐसे एआई-आधारित साइबर हथियारों का उपयोग करता है जो भारत की परमाणु कमान और नियंत्रण प्रणालियों को 'अंधा' या 'भ्रमित' कर सकें, तो इससे पैदा हुई अस्थिरता एक विनाशकारी गलतफहमी को जन्म दे सकती है। नई दिल्ली के लिए

चुनौती अब केवल दुश्मन के स्टील (हथियारों) का मुकाबला करने की नहीं है, बल्कि उनके सिलिकॉन (चिप्स और कोड) से आगे निकलने की भी है। भारत स्वायत्त युद्ध के युग में तकनीक से विमुख नहीं हो सकता, लेकिन उसे 'पूर्ण स्वचालन' के सम्मोहक जाल से भी बचना होगा। भारतीय रणनीतिक सोच की 'लक्ष्मण रेखा' स्पष्ट होनी चाहिएः एआई चेतावनी दे सकता है, लेकिन परमाणु बटन पर उंगली हमेशा मनुष्य की होनी चाहिए।

यांत्रिक खतरों के परे एक गहरा दार्शनिक संकट भी हैः डिजिटल सत्य की भंगुरता। सैन्य एआई के समर्थक तर्क देते हैं कि मशीनें युद्ध के कोहरे में 'प्रोमेथियन स्पष्टता' लाएंगी, लेकिन वे 'सत्यनिष्ठा हमलों' के बढ़ते जोखिम को नजरअंदाज कर देते हैं। यदि कोई साइबर हमला एआई के डेटासेट को दूषित कर दे और मशीन को एक काल्पनिक परमाणु हमले का विश्वास दिला दे, तो परिणाम एक डिजिटल मतिभ्रम से उपजी महाप्रलय होगी। एक मानवीय कमांडर के विपरीत, अल्गोरिदम में सहज संदेह या नैतिक हिचकिचाहट की क्षमता नहीं होती। यह अपने निर्माताओं के निहित पूर्वाग्रहों को ढोता है, जो अक्सर बचाव की मुद्राओं को भी युद्ध की आक्रामक पूर्वसूचना मान लेता है। यह 'मशीनी गलतफहमी' दुनिया को राख के ढेर में बदल सकती है, संकल्प की विफलता के कारण नहीं, बल्कि कोड की विफलता के कारण।

इस तकनीकी अस्थिरता के बीच, वैश्विक राजनीतिक परिदृश्य एक ऐसी उग्र एकपक्षीय आक्रामकता की ओर मुड़ गया है जो 'संप्रभुता' के सिद्धांत को एक 'सशर्त विलासिता' मानती है। जब महाशक्तियाँ हस्तक्षेप की सीमाओं को अपनी सुविधा से परिभाषित करने लगती हैं—चाहे वह परमाणु ठिकानों पर हमले हों या सीमाओं के पार जाकर सैन्य अभियान—तो भारत एक कूटनीतिक कुरुक्षेत्र के बीच खड़ा होता है। जहाँ एक ओर क्षेत्रीय विस्तारवाद को संतुलित करने के लिए पश्चिमी देशों के साथ रणनीतिक साझेदारी अनिवार्य है, वहीं भारत को अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' की रक्षा पूरी शिद्दत से करनी होगी। पश्चिम एशिया की अस्थिरता और ऊर्जा केंद्रों पर होते हमले सीधे तौर पर भारत की ऊर्जा सुरक्षा और चाबहार जैसी सभ्यतापगत परियोजनाओं को प्रभावित करते हैं। भारत की भूमिका एक 'स्थिरता के लंगर' की होनी चाहिए, जो खंडित होती दुनिया को यह याद दिला सके कि 'विवेक के बिना शक्ति' आत्मघाती होती है।

ग्लोबल साउथ की प्रखर आवाज़ के रूप में, भारत पर एक ऐसा नैतिक उत्तरदायित्व है जो उसकी अपनी सीमाओं से परे है। भविष्य के युद्ध केवल अमीर देशों द्वारा नहीं लड़े जाएंगे, लेकिन उनके परिणाम—महंगा तेल, टूटी हुई आपूर्ति श्रृंखलाएं और आर्थिक अस्थिरता—विकासशील देशों द्वारा सबसे तीव्रता से महसूस किए जाएंगे। भारत को 'डिजिटल कुरुक्षेत्र' की नैतिकता पर वैश्विक विमर्श का नेतृत्व करना चाहिए। हमें एक 'डिजिटल जिनेवा कन्वेंशन' की वकालत करनी होगी जो पूरी तरह से स्वायत्त परमाणु प्रक्षेपणों को प्रतिबंधित करे और डेटा के सैन्यीकरण के खिलाफ सुरक्षा कवच तैयार करे।

हम एक नए परमाणु युग में प्रवेश कर चुके हैं, जहाँ यूरेनियम का प्रबंधन तंत्रिका तंत्र द्वारा और प्लूटोनियम की निगरानी अल्गोरिदम द्वारा की जा रही है। इस युग में, भारत की सबसे बड़ी संपत्ति केवल उसकी तकनीकी क्षमता नहीं, बल्कि उसका 'विवेक' होगा। भविष्य के युद्ध वे जीतेंगे जिनके पास सबसे स्पष्ट डेटा होगा, लेकिन भविष्य की शांति उनके पास होगी जिनके पास सबसे स्पष्ट दृष्टि होगी।

भारत को अपनी निवारक क्षमता का आधुनिकीकरण करना होगा, अपनी साइबर सीमाओं को सुरक्षित करना होगा और एक ऐसी 'संप्रभु एआई' का निर्माण करना होगा जो विदेशी हस्तक्षेप से मुक्त और उसकी अनूठी सामरिक संस्कृति में रची-बसी हो। किंतु इन सबके ऊपर, भारत को अपने विनाश और अपने उद्धार, दोनों का स्वामी बने रहना होगा। इस डिजिटल कुरुक्षेत्र में, जहाँ निर्णय लेने का समय सेकंडों में सिमट गया है और जहाँ एक गलत अल्गोरिदम पूरी सभ्यता को मिटा सकता है, भारत का संयम ही उसका ढाल होगा और उसका विवेक ही विश्व का लंगर। एक उभरती हुई शक्ति की नियति यही हैः यह सुनिश्चित करना कि तकनीक मानवता की सेवक बनी रहे और मानवीय चेतना का प्रकाश कभी मशीनों के ठंडे तर्क की भेंट न चढ़े। ●

श्रीराजेश

परिसीमन ततैया का छत्ता

परिसीमन की प्रक्रिया भारत के लोकतांत्रिक और संघीय ढांचे के लिए एक निर्णायक मोड़ बन चुकी है। यह केवल संसदीय सीटों के पुनर्वितरण का प्रश्न नहीं, बल्कि प्रतिनिधित्व, संतुलन और राष्ट्रीय एकता की गहरी परीक्षा है।

भारतीय लोकतंत्र का रथ एक ऐसे दोराहे पर आकर खड़ा हो गया है, जहां से आगे का रास्ता न तो सीधा है और न ही सपाट। भूगोल और जनसांख्यिकी की जटिलताएं कभी भी संघवाद के चौकोर खानों में आसानी से फिट नहीं होतीं। यही कारण है कि जैसे-जैसे जनगणना और उसके बाद होने वाले परिसीमन की घड़ी निकट आ रही है, प्रतिनिधित्व और आनुपातिकता का प्रश्न एक ज्वलंत मुद्दा बनकर उभर रहा है। यह केवल सीटों के गणित का सवाल नहीं है - यह भारत की आत्मा, उसके संघीय ढांचे और विविधता के बीच संतुलन का सवाल है।

प्रश्न यह है कि राजनीतिक प्रतिनिधित्व को कब तक और किस हद तक केवल जनसंख्या के आंकड़ों से बांधकर रखा जाएगा? क्या लोकतंत्र का अर्थ केवल 'सिर गिनना' है, या उन आवाजों को भी सुनना है जो संख्या में कम होते हुए भी राष्ट्र निर्माण में बराबर की भागीदार हैं? दक्षिण भारत के राज्यों ने शिक्षा, स्वास्थ्य और जनसंख्या नियंत्रण में जो ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की है, क्या उन्हें उसका दंड अपनी राजनीतिक शक्ति खोकर चुकाना होगा? यह स्थिति एक ऐसे ततैया के छत्ते को छेड़ देने जैसी है, जिससे निकला विष भारतीय संघवाद की नसों को नीला कर सकता है।

परिसीमन की इस अपरिहार्यता से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता। लेकिन सवाल यह है कि क्या कोई ऐसा 'मध्य मार्ग' है जो उत्तर भारत की बढ़ती आबादी को प्रतिनिधित्व भी दे और दक्षिण भारत को 'आहत' भी न होने दे?

डॉ. बी.आर. अंबेडकर का संघीय दर्शन

और बहुसंख्यकवाद का अट्टहास

इस वैचारिक कुरुक्षेत्र की गहराई को समझने के लिए हमें आधुनिक भारत के मुख्य वास्तुकार डॉ. बी.आर. अंबेडकर के उन मौलिक विचारों की ओर लौटना होगा, जिन्होंने भारतीय संघवाद की आधारशिला रखी थी। संविधान सभा के गहन वाद-विवादों में बाबासाहेब ने स्पष्ट किया था कि भारत 'राज्यों का एक संघ' है। उन्होंने एक शक्तिशाली केंद्र की वकालत की थी ताकि देश को बाहरी और आंतरिक विघटन से बचाया जा सके, लेकिन वे 'बहुसंख्यकवाद के अत्याचार' के खतरों के प्रति भी उतने ही सजग थे।

अंबेडकर का मानना था कि संघवाद का अर्थ केवल केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का तकनीकी बँटवारा नहीं है, बल्कि यह विभिन्न भाषाई और क्षेत्रीय समूहों के बीच 'राजनीतिक संतुलन' बनाए रखने का एक जीवंत तंत्र है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स' में एक अत्यंत महत्वपूर्ण चेतावनी दी थी। उन्होंने तर्क दिया था कि यदि उत्तर के विशालकाय राज्य केवल अपनी अंधी जनसंख्या के बल पर दक्षिण के राज्यों पर राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने लगे, तो दक्षिण भारत के लोग स्वयं को एक 'आंतरिक उपनिवेश' के रूप में महसूस करने लगेंगे। अंबेडकर ने स्पष्ट कहा था कि लोकतंत्र केवल 'एक व्यक्ति, एक वोट' नहीं है, बल्कि यह 'एक मूल्य' भी है। यदि एक क्षेत्र की विफलता (जनसंख्या विस्फोट) दूसरे क्षेत्र की सफलता (जनसंख्या नियंत्रण) को निगल जाए, तो संघवाद का नैतिक आधार ही समाप्त हो जाता है।

आज जब परिसीमन की आहट से दक्षिण में असुरक्षा की गहरी लहर है, तो अंबेडकर का यह भय यथार्थ के अत्यंत निकट प्रतीत होता है। यदि उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्य अपनी जनसांख्यिकीय अक्षमता को 'राजनीतिक लाभांश' में बदल लेते हैं, तो यह उस सामाजिक अनुबंध का उल्लंघन होगा, जिसे संविधान निर्माताओं ने बड़ी बारीकी से बुना था। अंबेडकर का दर्शन हमें सचेत करता है कि 'भीड़तंत्र' और 'लोकतंत्र' के बीच की रेखा बहुत महीन है और परिसीमन इस रेखा को मिटाने का माध्यम नहीं बनना चाहिए।

राजकोषीय विखंडन: 15वें वित्त आयोग का विवाद और जनसांख्यिकी का दंड

परिसीमन का विवाद केवल संसद की दीर्घाओं तक सीमित नहीं है, इसकी जड़ें राज्यों की तिजोरी और विकास की गति से भी जुड़ी हैं। 15वें वित्त आयोग की सिफारिशों ने इस 'ततैया के छत्ते' को और अधिक उत्तेजित कर दिया। विवाद का मुख्य बिंदु था—राजस्व आवंटन के लिए 1971 की जनगणना के पुराने और स्वीकृत आधार को छोड़कर 2011 की जनगणना के आँकड़ों को प्राथमिक आधार बनाना।

दक्षिण भारत के राज्यों—तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश

1976 का 42 वां संशोधन
इंदिरा गांधी का वह 'रणनीतिक हिम-युग'

भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में वर्ष 1976 का 42वां संविधान संशोधन एक ऐसे 'रणनीतिक हिबर्नेशन' के रूप में जाना जाता है, जिसने लगभग पाँच दशकों तक एक बड़े संवैधानिक संकट को थामे रखा। आपातकाल की उथल-पुथल के बीच, तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने महसूस किया कि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के लक्ष्यों को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब राज्यों को यह विश्वास दिलाया जाए कि जनसंख्या नियंत्रण के प्रयासों से उनकी राजनीतिक शक्ति में रत्ती भर भी कमी नहीं आएगी। उन्होंने अनुच्छेद 82 और 170 में ऐतिहासिक संशोधन कर संसदीय सीटों के पुनर्वितरण को वर्ष 2000 तक के लिए 'फ्रीज' कर दिया। बाद में, 2001 में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने 84वें संशोधन के जरिए इस पाबंदी को 2026 तक के लिए बढ़ा दिया। इंदिरा गांधी का यह निर्णय केवल एक प्रशासनिक आदेश नहीं था, बल्कि वह 'राज्यों के साथ किया गया एक पवित्र वादा' था। आज जब 2026 की वह लक्ष्मण-रेखा समाप्त हो रही है, तो 50 साल पहले टाला गया वह जनसांख्यिकीय सैलाब अब अपनी पूरी भयावहता के साथ हमारे लोकतंत्र की देहरी पर खड़ा है।

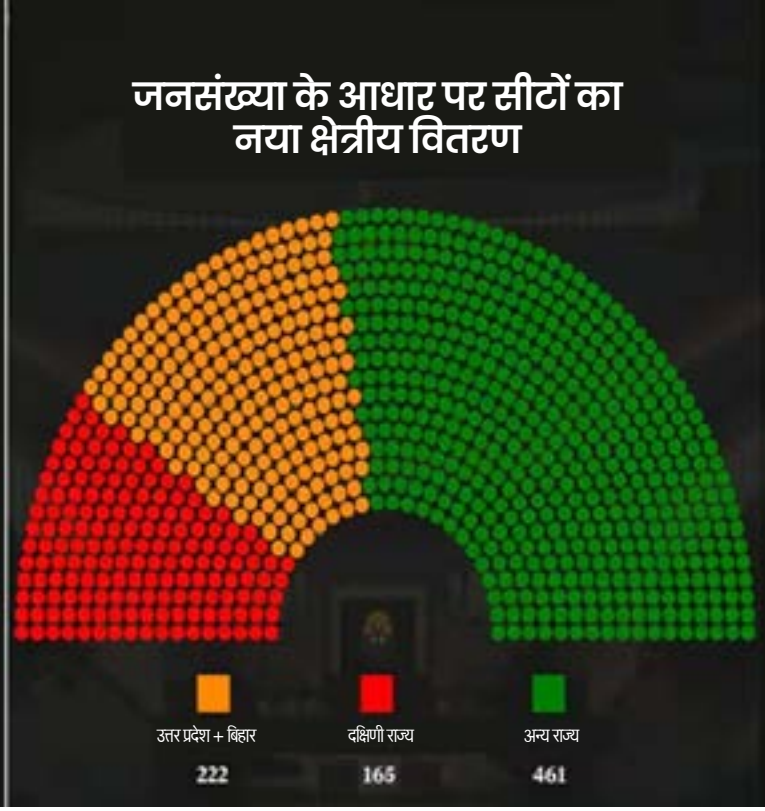

और तेलंगाना—का तर्क अत्यंत प्रबल और न्यायसंगत है। उन्होंने तर्क दिया कि उन्होंने पिछले पाँच दशकों में केंद्र सरकार द्वारा दी गई 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' (1976) को ईश्वरीय आदेश की तरह माना और लागू किया। उन्होंने अपनी प्रजनन दर (TFR) को प्रतिस्थापन स्तर (2.1) से भी नीचे पहुँचा दिया। लेकिन 15वें वित्त आयोग द्वारा 2011 के आँकड़ों का उपयोग करने का अर्थ यह था कि इन राज्यों को उनके द्वारा प्राप्त की गई 'जनसांख्यिकीय सफलता' के लिए आर्थिक दंड दिया जा रहा था। यह एक भयावह विरोधाभास है—जहाँ उत्तर के बीमारू राज्यों को उनकी 'प्रजनन विफलता' के लिए अधिक फंड और अधिक संसाधन प्राप्त हो रहे हैं।

राजकोषीय संघवाद की दृष्टि से, यह विवाद एक विखंडनकारी स्थिति पैदा कर रहा है। दक्षिण के राज्य भारत के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 30-35% का योगदान देते हैं, जबकि राष्ट्रीय जनसंख्या में उनका हिस्सा लगातार गिर रहा है। यदि 2027 के बाद परिसीमन केवल जनसंख्या के अनुपात में हुआ, तो स्थिति यह होगी कि 'कमाई' दक्षिण करेगा और 'खर्च' का निर्णय उत्तर भारत का राजनीतिक आधिपत्य लेगा। यह 'प्रतिनिधित्व रहित कराधान' का एक आधुनिक संस्करण होगा, जो किसी भी संघ की आंतरिक शांति के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। 15वें वित्त आयोग के विवाद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जनसंख्या आधारित आवंटन अब भारत की एकता के लिए 'रणनीतिक जोखिम' बन चुका है।

नारी शक्ति वंदन और परिसीमन का संवैधानिक गठबंधन

वर्ष 2023 में पारित 'नारी शक्ति वंदन अधिनियम' (महिला आरक्षण विधेयक) ने परिसीमन के इस जटिल प्रश्न में एक भावुक और 'नैतिक पेंच' जोड़ दिया है। इस कानून की प्रस्तावना में ही यह शर्त रखी गई है कि लोकसभा और विधानसभाओं में महिलाओं को 33% आरक्षण तभी मिलेगा, जब अगली जनगणना के बाद परिसीमन की प्रक्रिया सफलतापूर्वक संपन्न हो जाएगी। इस वैधानिक शर्त ने परिसीमन को एक 'संवैधानिक अपरिहार्यता' बना दिया है जिसे अब टाला नहीं जा सकता।

राजनीतिक दृष्टिकोण से, यह एक 'चेकमेट' की स्थिति है। कोई भी राजनीतिक दल महिला आरक्षण का विरोध नहीं करना चाहता, लेकिन इसे परिसीमन से जोड़ने का अर्थ है कि आधी आबादी को शक्ति देने के मार्ग में क्षेत्रीय संतुलन को दांव पर लगाना। यदि महिला आरक्षण लागू करने के लिए उत्तर भारत की सीटों में भारी बढ़ोतरी की जाती है और दक्षिण को हाशिए पर धकेला जाता है, तो यह 'लैंगिक न्याय' बनाम 'क्षेत्रीय न्याय' का एक विचित्र युद्ध बन जाएगा। क्या भारतीय संसद के पास यह कूटनीतिक बुद्धिमत्ता है कि वह महिलाओं के ऐतिहासिक प्रतिनिधित्व और दक्षिण भारत की क्षेत्रीय अस्मिता के बीच कोई न्यायपूर्ण समन्वय स्थापित कर सके? यह प्रश्न 2026 के बाद भारतीय राजनीति के सबसे बड़े मंथन का केंद्र होगा।

समाधान का वैश्विक मॉडल: यूरोपीय 'अवरोही आनुपातिकता'

इस पहेली को सुलझाने के लिए हमें गणित के सूत्रों से बाहर निकलकर 'दार्शनिक कूटनीति' की शरण में जाना होगा। हमें यूरोपीय संघ के उस सफल प्रयोग से सीखना चाहिए जिसे 'अवरोही आनुपातिकता' कहा जाता है। यूरोपीय संसद में जर्मनी (8.3 करोड़ आबादी) और माल्टा (5 लाख आबादी) जैसे देशों के बीच प्रतिनिधित्व का संतुलन इसी सिद्धांत पर आधारित है। नियम यह है कि बड़े राज्यों के पास कुल सीटें तो अधिक होंगी, लेकिन छोटे राज्यों के पास उनकी जनसंख्या के अनुपात में 'अपेक्षाकृत अधिक' सीटें होंगी ताकि वे बड़े राज्यों के जनसांख्यिकीय दबाव में दब न जाएँ।

भारतीय संदर्भ में, रवि के. मिश्रा का सुझाव इसी का एक आधुनिक

संस्करण है। उनका तर्क है कि लोकसभा की कुल सीटों की संख्या को बढ़ाकर (लगभग 848 या उससे अधिक) इस प्रकार पुनर्गठित किया जाए कि किसी भी राज्य की वर्तमान सीटों में एक भी सीट की कमी न आए। यदि उत्तर प्रदेश की सीटें 80 से बढ़कर 120 होती हैं, तो केरल की सीटों को 20 पर ही स्थिर रखा जाए, भले ही उसकी जनसंख्या का राष्ट्रीय अनुपात घटा हो। यह 'एक व्यक्ति, एक मूल्य' के सिद्धांत और 'क्षेत्रीय स्वायत्तता' के बीच का एक सम्मानजनक और न्यायपूर्ण समझौता होगा।

राज्यसभा: राज्यों के हितों का अजेय सुरक्षा कवच

दक्षिण और पूर्वोत्तर की चिंताओं को दूर करने का एक और ठोस तरीका 'उच्च सदन' यानी राज्यसभा के चरित्र और शक्तियों में आमूल-चूल परिवर्तन करना है। हमें अमेरिका की 'सीनेट' के मॉडल से प्रेरणा लेनी चाहिए, जहाँ हर राज्य को, चाहे वह क्षेत्रफल और जनसंख्या में कितना ही बड़ा या छोटा क्यों न हो, समान रूप से दो-दो सीटें दी जाती हैं।

भारत में भी, लोकसभा को तो जनसंख्या के आधार पर विस्तारित होने दिया जा सकता है, लेकिन राज्यसभा की सीटों को कम से कम 2047 (आजादी के शताब्दी वर्ष) तक 'यथास्थिति' में फ्रीज रखा जाना चाहिए। इसके साथ ही, राज्यसभा की शक्तियों में विस्तार होना चाहिए—विशेषकर उन विषयों पर जो राज्यों की संप्रभुता, राजकोषीय स्वायत्तता और भाषाई अधिकारों से जुड़े हैं। यदि राज्यसभा को 'समान प्रतिनिधित्व' वाला एक सशक्त सदन बना दिया जाए, तो दक्षिण के राज्यों को यह भय नहीं रहेगा कि उत्तर के विशाल राज्य दिल्ली में बैठकर उनकी नियति का फैसला अकेले करेंगे। राज्यसभा को 'राज्यों का अजेय ढाल' बनाना ही भारतीय संघवाद की संजीवनी है।

बड़े राज्यों का पुनर्गठन: सुशासन की अनिवार्य शर्त

परिसीमन की सबसे बड़ी विसंगति यह है कि यह केवल 'संख्याबल' को मान्यता देता है, 'प्रबंधकीय सुशासन' को नहीं। आज उत्तर प्रदेश की आबादी दुनिया के कई बड़े देशों से अधिक है। क्या एक ही प्रशासनिक केंद्र से इतने विशाल भूगोल और जनसांख्यिकी का न्यायपूर्ण संचालन संभव है? परिसीमन के इस संकट को हमें एक अवसर में बदलना चाहिए और 'राज्य पुनर्गठन आयोग 2.0' का गठन करना चाहिए।

उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल जैसे विशालकाय राज्यों को छोटे और प्रशासनिक रूप से सक्षम इकाइयों में विभाजित करना अब राष्ट्रहित में है। विदर्भ, पूर्वांचल, बुंदेलखंड, हरित प्रदेश, मारवाड़ और मिथिला जैसे राज्यों का उदय सत्ता के संकेंद्रण को तोड़ेगा। जब उत्तर प्रदेश पाँच छोटे राज्यों में बँट जाएगा, तो दिल्ली की सत्ता का रास्ता केवल एक सूबे के हाथ में नहीं होगा। छोटे राज्य न केवल सुशासन सुनिश्चित करते हैं, बल्कि वे संघ में शक्ति के संतुलन को भी विकेंद्रीकृत करते हैं। यह परिसीमन के विष का सबसे प्रभावी काट है—सत्ता को संख्या से हटाकर सेवा के केंद्रों में विभाजित करना।

इन्फोग्राफिक्स

उत्तर बनाम दक्षिण

परिसीमन और संघीय संतुलन का धर्मसंकट

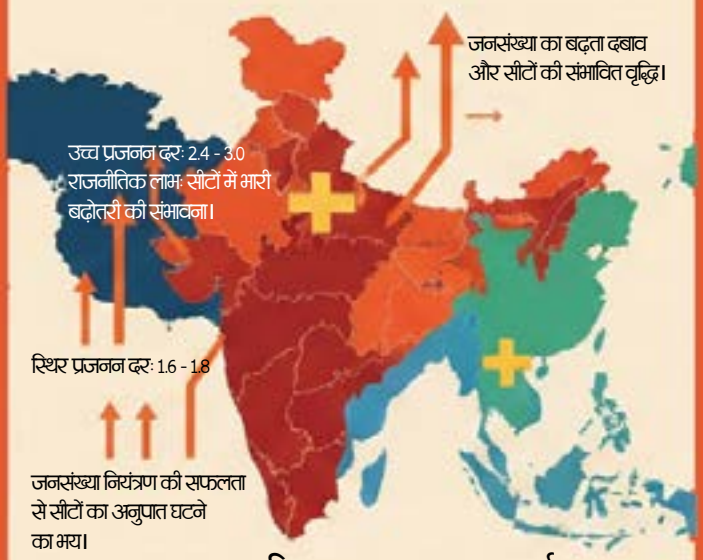

उत्तर बनाम दक्षिण : एक तुलनात्मक यथार्थ

मानक सूचकांक	उत्तर भारत	दक्षिण भारत
प्रजनन दर	उच्च (2.4 - 3.0)	निम्न (1.6 - 1.8)
राजस्व योगदान	मध्यम/निम्न (18% - 22%)	अत्यंत उच्च (30% - 35%)
साक्षरता और स्वास्थ्य मानक	सुधार की आवश्यकता	वैश्विक मानकों के निकट
वर्तमान लोकसभा सीटें	₹170	₹129
परिसीमन के बाद (अनुमानित)	250+ (भारी बढ़त)	₹135 (मामूली बढ़त)
डेमोग्राफिक स्टेटस	जनसांख्यिकीय लाभांश की चुनौती	जनसांख्यिकीय दंड का भय

(यह डेटा स्पष्ट करता है कि परिसीमन का विवाद केवल राजनीति नहीं, बल्कि आर्थिक न्याय, सामाजिक प्रगति और राष्ट्र के भविष्य के स्वरूप का प्रश्न है।)

भारत 2.0: सांस्कृतिक भूगोल व प्राचीन जनपदों की वापसी

प्रसिद्ध लेखक गौतम देसीराजू ने 'भारत 2.0' की जो परिकल्पना पेश की है, वह केवल प्रशासनिक नहीं, बल्कि क्रांतिकारी है। उनका सुझाव है कि भारत को लगभग 75 राज्यों में पुनर्गठित किया जाए, जिनकी जनसंख्या और भौगोलिक आकार में एक प्रकार का सामंजस्य हो। यह विचार हमें प्राचीन भारत के 'जनपदों' और 'गणराज्यों' की याद दिलाता है। वर्तमान प्रशासनिक सीमाएँ काफी हद तक ब्रिटिश औपनिवेशिक सुविधा और 1956 के भाषाई आधार की विरासत हैं। सत्तर के दशक में राशिदुद्दीन खान ने भी 56 इकाइयों वाले संघीय भारत का प्रस्ताव रखा था। यदि भारत को वास्तव में एक 'आधुनिक और विकसित' राष्ट्र

बनना है, तो उसे अपनी आंतरिक सीमाओं को वैज्ञानिक प्रबंधन और सांस्कृतिक पहचान के आधार पर फिर से खींचना होगा। 75 राज्यों का यह ढाँचा परिसीमन के विवाद को जड़ से समाप्त कर देगा, क्योंकि तब हर राज्य का भार, प्रभाव और प्रतिनिधित्व लगभग समान होगा। यह भारत को उसकी जड़ों से जोड़ने और भविष्य के लिए तैयार करने का सबसे तार्किक मार्ग है।

शक्ति का ध्रुवीकरण और राज्यों का बदलता राजनीतिक कद

पिछले सात दशकों में भारतीय राजनीति का चरित्र 'राज्यों' के प्रभाव से खिसककर 'दिल्ली' के केंद्र की ओर झुक गया है। आज 56 लाख करोड़ रुपये का केंद्रीय बजट, जो सभी राज्यों के संयुक्त बजट से भी अधिक है, इस 'राजकोषीय वर्चस्व' का सबसे बड़ा प्रमाण है। जीएसटी के आने के बाद राज्यों की आर्थिक स्वायत्तता काफी हद तक कम हो गई है और वे अब केंद्र के 'हस्तांतरण' पर निर्भर हैं।

परिसीमन की सबसे बड़ी विसंगति यह है कि यह केवल 'संख्याबल' को मान्यता देता है, 'प्रबंधकीय सुशासन' को नहीं। आज उत्तर प्रदेश की आबादी दुनिया के कई बड़े देशों से अधिक है। क्या एक ही प्रशासनिक केंद्र से इतने विशाल भूगोल और जनसांख्यिकी का न्यायपूर्ण संचालन संभव है? परिसीमन के इस संकट को हमें एक अवसर में बदलना चाहिए और 'राज्य पुनर्गठन आयोग 2.0' का गठन करना चाहिए।

ऐसे में परिसीमन की प्रक्रिया राज्यों को और अधिक शक्तिहीन बना सकती है। यदि केंद्र सरकार ही नीतियों और संसाधनों का मुख्य स्रोत है, तो राज्यों की भूमिका केवल 'सेवा वितरण' की रह जाएगी। इस स्थिति में, राज्यों का बड़ा भौगोलिक आकार उनके लिए शक्ति नहीं, बल्कि एक प्रशासनिक बोझ बन जाता है। छोटे राज्य अधिक पारदर्शी, गतिशील और जवाबदेह होते हैं। परिसीमन को केवल राजनीतिक कुर्सियों की दृष्टि से नहीं, बल्कि नागरिकों तक सुलभ न्याय और सुविधाओं की पहुँच की दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता का नया संकल्प

परिसीमन की यह प्रक्रिया केवल सीटों का गणितीय बंटवारा नहीं है, यह भारत के भविष्य का मानचित्र खींचने का ऐतिहासिक अवसर है। जैसे ही जनगणना के आंकड़े सामने आएंगे, देश में एक अभूतपूर्व वैचारिक और राजनीतिक मंथन शुरू होगा। निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का पुनर्निर्धारण करते समय हमें केवल कैलक्युलेटर का उपयोग नहीं करना है, बल्कि ऐतिहासिक बुद्धिमत्ता और संघीय संवेदनशीलता का परिचय देना है।

यदि हमने दक्षिण भारत को यह महसूस होने दिया कि उनकी राष्ट्र-निर्माण की सफलता ही उनकी राजनीतिक निर्बलता बन गई है, तो हम 'विविधता में एकता' के उस पवित्र संकल्प के साथ द्रोह करेंगे। भारत को इस संकट से निकलने के लिए एक 'नए संघीय अनुबंध' की आवश्यकता है—जहाँ उत्तर के जनबल को प्रतिनिधित्व मिले, दक्षिण की मेधा को सुरक्षा मिले, महिलाओं को उनकी उचित भागीदारी मिले और छोटे राज्यों को उनकी गरिमापूर्ण पहचान मिले।

परिसीमन का यह 'ततैया का छत्ता' यदि कूटनीतिक विवेक से संभाला गया, तो यह भारतीय लोकतंत्र को अधिक जीवंत, उत्तरदायी और संतुलित बनाएगा। लेकिन यदि इसे केवल तात्कालिक सत्ता के अंकगणित के लिए छेड़ा गया, तो इससे उठने वाली क्रोध की लहरें गणराज्य की नींव को हिला सकती हैं। यह समय संकीर्ण राजनीति से ऊपर उठकर 'राष्ट्र-प्रथम' की सोच के साथ एक सर्वसमावेशी समाधान खोजने का है। ●

महाराष्ट्र का नया व्याकरण
ठाकरे विरासत का विसर्जन

जलज श्रीवास्तव

महाराष्ट्र के हालिया स्थानीय निकाय चुनाव किसी साधारण राजनीतिक मुकाबले का परिणाम नहीं, बल्कि एक पूरे युग के क्षय का संकेत हैं। मतदाताओं का झुकाव शिंदे की शिवसेना की ओर यह बताता है कि बाल ठाकरे की विरासत अब स्मृति का विषय अधिक और राजनीतिक शक्ति का स्रोत कम रह गई है। यह चुनाव उस कठोर सच्चाई को सामने रखता है कि महाराष्ट्र की राजनीति अब प्रतीकों से नहीं, सत्ता, संगठन और स्पष्ट वैचारिक दिशा से तय हो रही है।

महाराष्ट्र के हालिया स्थानीय निकाय चुनावों के नतीजे किसी सामान्य चुनावी हार-जीत की कहानी नहीं हैं, बल्कि यह एक राजनीतिक युग के अवसान का 'मर्सिया' हैं। ठाकरे बंधुओं—उद्धव और राज—का एक मंच पर आना भले ही भावनात्मक रूप से आंदोलित करने वाला दृश्य रहा हो, लेकिन मतदाता के विवेक पर इसका कोई जादुई असर नहीं हुआ। मराठी मानुष के वोट बैंक का एक बड़ा हिस्सा शिंदे की शिवसेना की ओर झुक गया, जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि बाल ठाकरे की विरासत अब केवल नाम की मोहताज नहीं रही, बल्कि उसके अर्थ बदल चुके हैं। यह चुनावी फैसला महाराष्ट्र की राजनीति में उन अनुत्तरित प्रश्नों को मुखर कर रहा है, जिन्हें अब तक दबी जुबान से टाला जा रहा था: क्या बाल ठाकरे के दोनों राजनीतिक वारिस मिलकर भी उस जनादेश को अपनी ओर मोड़ सकते हैं जो कभी उनकी बपौती था? यदि नहीं, तो क्या उनकी विरासत वास्तव में जीवित है, या वह

केवल एक 'प्रतीकात्मक अवशेष' बनकर रह गई है?

व्यक्तित्व का मोहपाश और संस्थागत शून्यता

बाल ठाकरे केवल शिवसेना के प्रमुख नहीं थे; वे स्वयं ही शिवसेना थे। उनका 'इकबाल' निर्विवाद था, उनकी आवाज़ ही कानून थी, और उनका हर समर्थक के साथ रिश्ता पूरी तरह से व्यक्तिगत और भावुक था। उनके नेतृत्व में शिवसेना एक पारंपरिक राजनीतिक संगठन की तरह कम और एक ऐसे आंदोलन की तरह अधिक थी, जो उनके ओजस्वी व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द केंद्रित था। वह आवाज़ विवादों को सुलझाती थी, अनुशासनात्मक चाबुक चलाती थी और कार्यकर्ताओं को विचारधारा के सांचे में ढालती थी।

किंतु, बाल ठाकरे ने जो बनाया, वह बहुत ठोस होते हुए भी संस्थागत रूप से कमजोर था। उनका नेतृत्व पूरी तरह से 'व्यक्ति-केंद्रित' था, जिसने कार्यकर्ताओं में अंधभक्ति तो पैदा की, लेकिन ऐसा कोई लोकतांत्रिक ढांचा नहीं खड़ा किया जिसके सहारे पार्टी उनके बाद भी अपने मूल स्वरूप में बनी रह सके। विडंबना यह है कि शिवसेना की इसी विशिष्टता ने उसे एक समय अजेय ताकत बनाया था, लेकिन आज वही अनोखापन उसकी विरासत को कमजोर और भंगुर बना रहा है।

वैधता का संकट और आक्रामक हिंदुत्व का विसर्जन

सत्ता का हस्तांतरण केवल कुर्सियों का मिलना नहीं होता; यह उस 'इकबाल' को बनाए रखने की चुनौती भी है। उद्धव ठाकरे को पार्टी का ढांचा और 'ठाकरे' उपनाम का वजन तो विरासत में मिला, लेकिन उन्हें वह कमान और करिश्मा सहजता से प्राप्त नहीं हुआ, जिसने संगठन को एक सूत्र में बांधे रखा था। शिवसेना को अधिक संवैधानिक, सौम्य और सत्ता-उन्मुख दल बनाने की उद्धव की कोशिशों ने अनजाने में ही उस 'आक्रामक प्रतिबद्धता' को कमजोर कर दिया, जो पार्टी की नींव थी। वह काडर, जो दो-टूक आक्रामकता और आक्रामक हिंदुत्व पर फलता-फूलता था, उसने खुद को वैचारिक अनिश्चय की स्थिति में पाया। परिणाम यह हुआ कि पार्टी आज भी बाल ठाकरे का नाम तो लेती है, लेकिन उनका व्यवहार अब 'बाल ठाकरे की शिवसेना' जैसा नहीं रहा।

इसी वैचारिक रिक्तता का लाभ एकनाथ शिंदे ने अत्यंत विध्वंसक और प्रभावी ढंग से उठाया। शिंदे का तर्क यह रहा है कि उद्धव ने सत्ता के मोह में कांग्रेस और शरद पवार की राकांपा के साथ गठबंधन कर बाल ठाकरे के मूल आक्रामक हिंदुत्व से समझौता कर लिया। यह दावा उनके 2022 के विद्रोह का नैतिक आधार बना। उद्धव मुख्यमंत्री की कुर्सी से हाथ धो बैठे और आज, 2024 के बाद, शिंदे स्वयं को बाल ठाकरे के मूल राजनीतिक स्वभाव के सच्चे वैचारिक उत्तराधिकारी के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। यहाँ उद्धव 'विरासत की वैधता' का प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि शिंदे 'विरासत की निरंतरता' का।

करिश्मा बनाम यथार्थ: राज ठाकरे की सीमाएं

यदि उद्धव विरासत की वैधता हैं, तो राज ठाकरे उस 'करिश्मे'

के वाहक हैं, जो बाल ठाकरे की पहचान थी। राज को अपने चाचा की भाषण कला, टकराव की शैली और राजनीतिक समझ विरासत में मिली है। महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के माध्यम से उन्होंने बाल ठाकरे के उस पुराने अंदाज को—सड़कों पर आक्रामकता, प्रवासियों के खिलाफ तीखे तेवर और 'मराठी मानुष' के दावे को—जीवित रखने का प्रयास किया है। हालिया चुनावों में उन्होंने उन्हीं नारों को दोहराया, जो 1960 के दशक की याद दिलाते हैं।

किंतु, राज की राजनीति उसी बीते दौर में थमी हुई है। प्रवासी विरोधी राजनीति आज के बहु-सांस्कृतिक और वैश्वीकृत महाराष्ट्र में केवल एक 'सप्लीमेंट' हो सकती है, मुख्य मुद्दा नहीं। बाल ठाकरे स्वयं इस विचार से बहुत आगे बढ़कर एक व्यापक हिंदुत्व के ढांचे में ढल चुके थे। राज का प्रयास उस अतीत को पुनर्जीवित करने का है, जिसे समय पीछे छोड़ चुका है।

महान विनियोग: भाजपा की रणनीतिक विजय

इस पूरे राजनीतिक परिदृश्य की सबसे महत्वपूर्ण कहानी 'विनियोग' की है। पिछले एक दशक में भारतीय जनता पार्टी ने शिवसेना की विरासत के उन तत्वों को—उग्र राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक अस्मिता और अनुशासित संगठन—बाल ठाकरे के वारिसों की तुलना में कहीं अधिक प्रभावी ढंग से अपनाया है। भाजपा ने शिवसेना के उस 'सड़क-छाप' प्रभाव को एक अनुशासित चुनावी मशीनरी में बदल दिया है।

शिंदे के साथ गठबंधन करके भाजपा ने उस वैचारिक स्थान पर कब्जा कर लिया है, जिस पर कभी शिवसेना का एकाधिकार था। इस प्रक्रिया में उसने उद्धव और राज दोनों को हाशिए पर धकेल दिया है। आज भाजपा के पास चुनावी गणित, संगठनात्मक गहराई और सत्ता तक पहुंच तीनों हैं, जबकि ठाकरे वारिस 'असली बनाम नकली' की बहस में उलझे हुए हैं।

प्रतीकवाद की घटती मुद्रा

चचेरे भाइयों का मिलन प्रतीकात्मक रूप से शक्तिशाली हो सकता है, लेकिन चुनावी राजनीति में प्रतीकवाद केवल तालियां बटोर सकता है, वोट नहीं। वोट विश्वसनीयता और ताकत को मिलते हैं। आज बाल ठाकरे की विरासत जो बची है, वह न तो कोई एकजुट पार्टी है और न ही निर्विवाद मराठी शक्ति। वह केवल एक 'प्रतीकात्मक पूंजी' है, जिसका मूल्य बाज़ार की राजनीति में लगातार गिर रहा है।

मतदाता का संदेश स्पष्ट और निर्णायक हैः विरासत का आदर किया जा सकता है, उसे याद किया जा सकता है, लेकिन उसे अब राजनीति की नई परिस्थितियों में दोबारा इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। बाल ठाकरे ने महाराष्ट्र की राजनीति को अपनी छवि के अनुसार गढ़ा था, लेकिन आज उनके प्रतिस्पर्धियों ने उस छवि का इस्तेमाल करना उनके अपने वारिसों से बेहतर सीख लिया है। टाइगर का युग अस्त हो रहा है, और पीछे रह गई है केवल एक गूँज, जो अब जंगल को नियंत्रित करने में असमर्थ है। ●

सह्याद्रि की अभेद्य पर्वतमालाओं और अरब सागर की उद्दाम लहरों की ओट में बसा महाराष्ट्र, भारतीय राजनीति की वह उर्वर प्रयोगशाला है जहाँ सत्ता का विमर्श अक्सर स्थापित क्षत्रपों और चंद रसूखदार परिवारों की निजी जागीरदारी के इर्द-गिर्द ही घूमता रहा। दशकों तक इस वीरभूमि का अलिखित संविधान यही रहा कि यहाँ का सिंहासन केवल 'मराठा' प्रभुत्व के लिए आरक्षित है। यशवंतराव चव्हाण की विरासत से लेकर शरद पवार के चाणक्य-कौशल तक, महाराष्ट्र की सियासत केवल मराठा अस्मिता और ग्रामीण सहकारिता के 'शुगर बेल्ट' की मिठास से संचालित होती थी। किंतु, 15 जनवरी 2026 के स्थानीय निकाय चुनावों के परिणामों ने न केवल इस पुरानी पटकथा को भस्म कर दिया है, बल्कि एक ब्राह्मण चेहरे—देवेंद्र फडणवीस—को आधुनिक काल के 'पेशवा' के रूप में महानायक बनाकर प्रतिष्ठित कर दिया है।

ऐतिहासिक रूप से 'पेशवा' छत्रपति के साम्राज्य के वे मेधावी प्रधानमंत्री थे, जिनके पास प्रशासनिक दृष्टि और सामरिक रणनीति का अद्भुत संगम था। आज के लोकतांत्रिक विन्यास में

मराठा दुर्ग में 'आधुनिक पेशवा' का शंखनाद

फडणवीस का उदय इसी मेधा के पुनरुद्धार जैसा है। उन्होंने महाराष्ट्र की उस सामंती राजनीति को चुनौती दी, जिसने लोकतंत्र को बारामती की गद्दी और मातोश्री के आदेशों तक सीमित कर दिया था। पश्चिमी महाराष्ट्र की सहकारी समितियों, चीनी मिलों और जिला बैंकों के जिस अभेद्य चक्रव्यूह को शरद पवार ने अपना अभेद्य सुरक्षा कवच बनाया था, फडणवीस ने उसे अपनी सूक्ष्म नीतिगत प्रहारों और पारदर्शी शासन के अमोघ अस्त्र से तार-तार कर दिया। यह केवल सत्ता का हस्तांतरण नहीं है, बल्कि उस आर्थिक ढांचे का विध्वंस है जिसने पीढ़ियों से ग्रामीण जनता को राजनीतिक बंधक बनाए रखा था।

29 में से 23 महानगर पालिकाओं पर भाजपा का एकछत्र आधिपत्य और एशिया की सबसे समृद्ध नगरपालिका, बीएमसी (BMC) पर भगवा ध्वज का फहराना, फडणवीस की उस 'सोशल इंजीनियरिंग' का प्रतिफल है जिसने मराठा वर्चस्व के समांतर 'माधव' (माली, धनगर, वंजारी) और अन्य पिछड़ा वर्गों (OBC) का एक ऐसा अजेय सामाजिक गठबंधन खड़ा कर दिया, जिसकी काट पारंपरिक क्षत्रपों के पास नहीं थी। फडणवीस की यह विजय एक 'मूक क्रांति' है, जिसने उस 'प्रशासक राज' का अंत किया जिसने चार वर्षों तक नगरों की लोकतांत्रिक आवाज को नौकरशाही की फाइलों में कैद कर रखा था। मार्च 2022 से जनवरी 2026 तक मुंबई और पुणे जैसे महानगरों में निर्वाचित प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति ने जो संवैधानिक शून्यता पैदा की थी, उसे फडणवीस ने राजनीतिक साहस के साथ समाप्त किया है।

अजित पवार के आकस्मिक और दुखद अवसान के बाद उपजी राजनीतिक शून्यता और उद्धव ठाकरे के नेतृत्व वाली शिवसेना के वैचारिक विसर्जन ने विपक्ष को दिशाहीन बना दिया है। ऐसे में फडणवीस ने खुद को स्थिरता, विकासवादी हिंदुत्व और 'न्यू इंडिया' के विजन के एकमात्र ध्रुव के रूप में स्थापित किया है। वे अब केवल महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री भर नहीं हैं, बल्कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के बाद की भाजपा की राष्ट्रीय कतार में अमित शाह और योगी आदित्यनाथ के समकक्ष एक 'रणनीतिक महाशक्ति' बनकर उभरे हैं। फडणवीस ने यह सिद्ध कर दिया है कि आधुनिक भारत की राजनीति अब 'कुल' (Lineage) और वंशवादी गौरव से नहीं, बल्कि 'कौशल' (Competence) और समावेशी नेतृत्व से तय होगी। 2029 के चुनावी क्षितिज पर उनकी यह धमक न केवल महाराष्ट्र, बल्कि पूरे देश के राजनीतिक भूगोल को बदलने का सामर्थ्य रखती है। यह उस 'ब्राह्मण पेशवा' का उदय है, जिसने मराठा किले के भीतर अपनी मेधा से एक ऐसी अमिट लकीर खींच दी है, जो आने वाले दशकों तक राज्य की राजनीति का व्याकरण तय करेगी। ●

पहचान का वनवास

अरुणिमा चंद्रा

चाय की खुशबू में दफन

असम के हरे-भरे चाय बागानों से उठती चाय की खुशबू में एक ऐसी कड़वाहट घुली है, जिसे मुख्यधारा का विमर्श अक्सर अनदेखा कर देता है। यह कड़वाहट है—अमरजीत केरकेट्टा जैसे लाखों आदिवासियों की छीनी गई पहचान की। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व, औपनिवेशिक सत्ता ने जिन्हें 'सस्ते श्रम' के रूप में झारखंड और छोटा नागपुर के जंगलों से उखाड़कर ब्रह्मपुत्र की वादियों में रोपा था, आज वे अपनी ही जड़ों के लिए तरस रहे हैं। अमरजीत का सवाल बुनियादी भी है और मारक भी : ₹आखिर 'टी-ट्राइब' का मतलब क्या है?₹ क्या सौ-दो सौ साल पुराना एक उद्योग, हज़ारों साल पुराने खड़िया, उरांव, मुंडा और संथाल इतिहास को अपनी मखमली चादर तले दबा सकता है? असम में इन आदिवासियों को 'टी-ट्राइब' या 'एक्स-टी ट्राइब' जैसे औद्योगिक लेबलों से पुकारा जाना केवल भाषाई सरलीकरण नहीं, बल्कि

असम के बागानों में 'टी-ट्राइब' पहचान तले दबी आदिवासी अस्मिता अब चुनावी गणित को चुनौती दे रही है। यह ऐतिहासिक न्याय और राजनीतिक वजूद की बहाली का एक निर्णायक शंखनाद है।

एक प्राचीन सभ्यता

एक व्यवस्थित 'सांस्कृतिक विलोपन' है। विडंबना देखिए, जिस आदिवासी पहचान को पड़ोसी राज्य पश्चिम बंगाल और उनकी पैतृक भूमि झारखंड में संवैधानिक गरिमा प्राप्त है, वही पहचान असम की सीमा में प्रवेश करते ही 'अन्य पिछड़ा वर्ग' की प्रशासनिक फाइलों में दफन हो जाती है। यह 'उधार की पहचान' के साथ जीने की एक ऐसी विवशता है, जहाँ व्यक्ति का वजूद उसके पसीने से सींचे गए चाय के पत्तों से तो आंका जाता है, लेकिन उसकी नागरिक गरिमा और भाषाई अस्मिता को मान्यता के गलियारों में दरकिनार कर दिया जाता है। अमरजीत की लड़ाई केवल आरक्षण की नहीं, बल्कि उस 'आदिवासी' शब्द को पुनः प्राप्त करने की है, जिसे 1950 के दशक में रणनीतिक रूप से उनसे छीन लिया गया था। यह संघर्ष उस ऐतिहासिक भूल को सुधारने का आह्वान है, जिसने एक पूरी सभ्यता को बागानों की चहारदीवारी में 'अदृश्य' बना दिया है।

अस्मिता बनाम चुनावी गणित

असम की राजनीति का वास्तविक व्याकरण अक्सर उन 'अदृश्य' हाथों से लिखा जाता है, जो सुबह की पहली किरण के साथ चाय की कोमल पत्तियां तोड़ते हैं। किंतु विडंबना यह है कि लोकतंत्र के इस महासमर में ये हाथ केवल 'वोट' डालने के लिए तो निर्णायक माने जाते हैं, परंतु सत्ता के शीर्ष पर अपनी दावेदारी पेश करने के लिए इन्हें संवैधानिक बाधाओं के चक्रव्यूह में उलझा दिया गया है। ऑल आदिवासी स्टूडेंट्स एसोसिएशन ऑफ असम जैसे संगठनों का यह ऐतिहासिक आरोप कि आजादी के बाद के शुरुआती दशकों में आदिवासियों को 'डी-शेड्यूल' कर उनकी राजनीतिक रीढ़ तोड़ दी गई, भारतीय संघवाद के एक स्याह अध्याय की ओर संकेत करता है। यह महज़ एक प्रशासनिक त्रुटि नहीं थी, बल्कि एक सोची-समझी 'रणनीतिक बेदखली' थी, जिसने करोड़ों आदिवासियों को उनके नैसर्गिक राजनीतिक नेतृत्व से वंचित कर दिया।

असम में झारखंड मूल के इन आदिवासियों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा देने से इनकार करना केवल तकनीकी जटिलता नहीं है; इसके पीछे सत्ता का वह गहरा संरक्षणवादी चरित्र और चुनावी भय छिपा है, जो संख्याबल के समीकरणों से थर्राता है। वर्तमान में असम की 126 विधानसभा सीटों में से केवल 19 सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित हैं। यदि सत्तर लाख से अधिक की आबादी वाले इन तथाकथित 'टी-ट्राइब्स' को उनकी वास्तविक जनजातीय पहचान मिल जाती है, तो आरक्षित सीटों का यह आंकड़ा उछलकर 45 तक पहुँच सकता है। यह सांख्यिकीय बदलाव केवल सीटों का बँवारा नहीं होगा, बल्कि यह असम की राजनीतिक धुरी को ही विस्थापित कर देगा। यह दिसपुर की देहरी पर एक ऐसे नेतृत्व को खड़ा कर देगा, जिसकी जड़ें छोटा नागपुर के पठारों और असम के बागानों के साझा संघर्षों में रची-बसी होंगी। राजनीतिक गलियारों में यह स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि आदिवासियों को एसटी का दर्जा देने का अर्थ है—असम में एक 'आदिवासी मुख्यमंत्री' की संभावना के द्वार खोलना। यही वह बुनियादी डर है जो बड़ी राजनीतिक शक्तियों को पिछले कई दशकों से 'चुनावी घोषणापत्रों' और 'धरातलीय क्रियान्वयन' के बीच झूलने पर विवश कर रहा है।

इस विवाद की जटिलता तब और बढ़ जाती है जब 'अहोम' जैसे सामाजिक और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली समुदाय भी स्वयं को एसटी श्रेणी में शामिल करने की मांग उठाते हैं। असम कैबिनेट द्वारा हाल ही में छह समुदायों को एसटी दर्जा देने की मंजूरी देने के बाद, संघर्ष 'मूल निवासी बनाम प्रवासी' की उस पेचीदा बहस में तब्दील हो गया है, जहाँ दो सदियों से असम की मिट्टी को अपने रक्त से सींचने वाले झारखंडी आदिवासियों को आज भी 'बाहरी' चश्मे से देखा जाता है। झारखंड सरकार द्वारा भेजा गया प्रतिनिधिमंडल इस मुद्दे को राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाने की एक कोशिश है, लेकिन अंतिम समाधान दिसपुर की राजनीतिक इच्छाशक्ति और ऐतिहासिक न्याय की भावना में ही निहित है। जब तक आदिवासियों को उनकी वास्तविक पहचान और संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त नहीं होती, तब तक 'सबका साथ, सबका विकास' का उद्घोष इन बागानों की गहरी घाटियों में महज़ एक गूँज बनकर रह जाएगा। भूमि के स्वामित्व से वंचित और न्यूनतम मज़दूरी की अंतहीन जद्दोजहद में फँसे ये आदिवासी आज उस मोड़ पर खड़े हैं, जहाँ उनकी अस्मिता और राजनीतिक वजूद के बीच की लक्ष्मण-रेखा धुंधली हो चुकी है। यह लड़ाई अब आरक्षण के आर्थिक लाभ से कहीं ऊपर उठकर 'आत्म-सम्मान' के उस कुरुक्षेत्र में पहुँच गई है, जहाँ वे 'टी-ट्राइब' के अपमानजनक लेबल को उतारकर अपनी प्राचीन जनजातीय विरासत को पुनः स्थापित करने के लिए संकल्पबद्ध हैं। असम की राजनीति में यह मूक क्रांति आने वाले वर्षों में सत्ता के स्थापित और वंशवादी बुर्जों को हिलाने का पूर्ण सामर्थ्य रखती है।

संसद में टकराव
जवाबदेही पर सवाल

संतोष कुमार

हालिया बजट सत्र में संसद केवल हंगामे का मंच नहीं, बल्कि सरकार की जवाबदेही की कठोर परीक्षा बन गया। विपक्ष ने सत्ता को ऐसे सवालों के कटघरे में खड़ा किया, जिनसे बचना अब राजनीतिक नहीं, लोकतांत्रिक संकट बनता जा रहा है।

हालिया बजट सत्र में संसद का वातावरण केवल शोर और व्यवधान का प्रतीक नहीं था, बल्कि वह उस गहरी लोकतांत्रिक बेचैनी का प्रतिबिंब था, जो आज देश के भीतर फैलती जा रही है। लोकसभा में विपक्ष के नेता राहुल गांधी ने इस सत्र को औपचारिक बहसों तक सीमित न रखते हुए सरकार को ऐसे मुद्दों पर घेरने की कोशिश की, जिनका सीधा संबंध देश की अर्थव्यवस्था, सुरक्षा, पारदर्शिता और संवैधानिक मूल्यों से है। यह टकराव केवल सत्ता और विपक्ष के बीच नहीं था, बल्कि यह सवाल पूछने के अधिकार और जवाब देने की जिम्मेदारी के बीच की लड़ाई थी।

सबसे पहले और सबसे तीखे रूप में जो मुद्दा उभरा, वह था एपस्टीन फाइल। अंतरराष्ट्रीय न्यायिक दस्तावेज़ों में दर्ज ये फाइलें किसी राजनीतिक अफवाह का हिस्सा नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर गंभीर आपराधिक मामलों से जुड़ा तथ्यात्मक रिकॉर्ड हैं। जेफरी एप्सटीन से जुड़े दस्तावेज़ों में जब भारत से संबंधित संदर्भ सामने

आए, तो विपक्ष का सवाल स्वाभाविक था—क्या सरकार इस पर पूरी पारदर्शिता के साथ संसद को जानकारी देगी? राहुल गांधी ने यह स्पष्ट किया कि आरोप लगाना विपक्ष का उद्देश्य नहीं, बल्कि स्पष्टीकरण मांगना उसका संवैधानिक कर्तव्य है। इसके बावजूद सरकार की प्रतिक्रिया टालने वाली रही। केंद्रीय मंत्री हरदीप सिंह पुरी की प्रेस कॉन्फ्रेंस ने तथ्यों को स्पष्ट करने के बजाय तकनीकी दलीलों का सहारा लिया, जिससे संदेह और गहरा हुआ। लोकतंत्र में नैतिक जवाबदेही केवल कानूनी बचाव से पूरी नहीं होती; वहां सार्वजनिक विश्वास भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है।

इसी कड़ी में भारत–अमेरिका व्यापार समझौते का मुद्दा उठा, जिसने विपक्ष को सरकार पर सीधा हमला करने का अवसर दिया। राहुल गांधी ने आरोप लगाया कि यह समझौता किसानों, छोटे व्यापारियों और घरेलू उद्योगों के हितों को कमजोर करता है। उनका सवाल था—क्या यह सौदा संसद और जनता को विश्वास में लेकर किया गया, या फिर इसे बंद दरवाज़ों के पीछे तय किया गया? सरकार की ओर से विस्तृत दस्तावेज़ी जवाब के बजाय सामान्य बयान दिए गए। विपक्ष का तर्क स्पष्ट थाः यदि समझौता देशहित में है, तो उससे जुड़ी हर शर्त और प्रभाव संसद के पटल पर क्यों नहीं रखे जाते?

बजट को लेकर विपक्ष की आलोचना केवल आंकड़ों तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने सरकार की दृष्टि पर सवाल खड़े किए। यह बजट बेरोज़गारी, महँगाई और ग्रामीण संकट जैसी समस्याओं का ठोस समाधान पेश करने में विफल रहा। युवाओं के लिए रोज़गार सृजन के वादे भाषणों में तो दिखे, लेकिन ज़मीनी योजनाओं में उनका प्रतिबिंब कम नज़र आया। ऊर्जा सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा और आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस जैसे भविष्य के निर्णायक क्षेत्रों पर बजट की चुप्पी यह दर्शाती है कि सरकार दीर्घकालिक रणनीति के बजाय तात्कालिक राजनीतिक संतुलन साधने में अधिक रुचि रखती है।

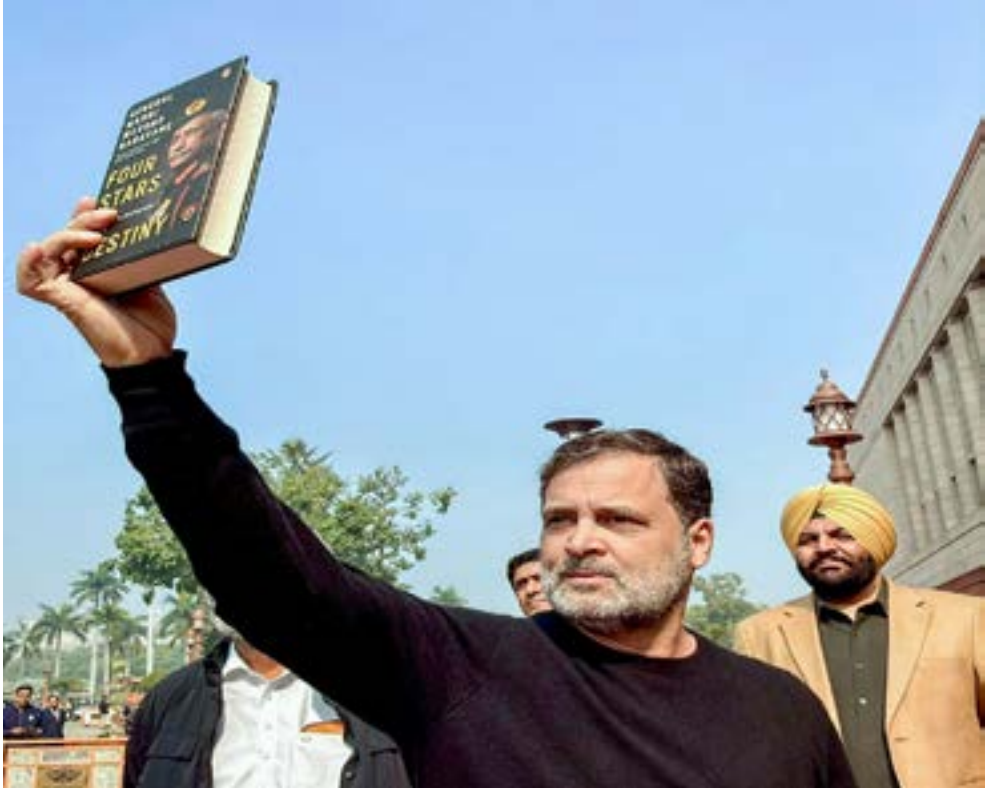

राष्ट्रीय सुरक्षा का मुद्दा भी इस सत्र में केंद्र में रहा। लद्दाख और चीन सीमा से जुड़ी स्थिति पर विपक्ष ने स्पष्ट चर्चा की मांग की, लेकिन सदन में इस विषय पर बहस को सीमित रखा गया। राहुल गांधी का तर्क था कि सीमा पर हालात पर सवाल उठाना राष्ट्रविरोध नहीं, बल्कि राष्ट्रहित है। यदि स्थिति सामान्य है, तो सरकार को खुलकर बताना चाहिए; और यदि गंभीर है, तो देश को सच जानने का अधिकार है। इस मुद्दे पर सरकार की असहजता ने विपक्ष के आरोपों को और धार दी।

संसदीय प्रक्रियाओं को लेकर भी विपक्ष का हमला तीखा था। विपक्षी सांसदों का निलंबन, बोलने के अवसरों में कटौती और नियमों की चयनात्मक व्याख्या—ये सब घटनाएँ इस ओर इशारा करती हैं कि बहुमत को संवाद के बजाय नियंत्रण का औज़ार बनाया जा रहा है। स्पीकर के विरुद्ध नोटिस देना कोई साधारण कदम नहीं होता; यह उस स्थिति को दर्शाता है जब विपक्ष को लगता है कि सदन का संतुलन और निष्पक्षता खतरे में है।

किसानों का मुद्दा भी इस सत्र में प्रमुखता से उठा। न्यूनतम समर्थन मूल्य, कृषि आय की स्थिरता और आयात नीति को लेकर विपक्ष ने सरकार से स्पष्ट जवाब मांगा। उनका तर्क था कि अंतरराष्ट्रीय समझौतों की आड़ में यदि घरेलू कृषि को कमजोर किया गया, तो इसका सीधा असर देश की खाद्य सुरक्षा पर पड़ेगा। यह चेतावनी राजनीतिक बयान से अधिक एक नीतिगत आग्रह थी।

सरकार का बार-बार दोहराया गया बचाव—कि विपक्ष निराधार आरोप लगा रहा है—अब असर खोता दिख रहा है। जब सवाल लगातार बढ़ते जाएँ और जवाब लगातार टलते रहें, तो लोकतंत्र में अविश्वास की खाई गहरी होती है। विपक्ष का रुख साफ हैः पारदर्शिता कोई विकल्प नहीं, बल्कि अनिवार्यता है। चाहे मामला एपस्टीन फाइल का हो, व्यापार समझौतों का हो, बजट की प्राथमिकताओं का हो या राष्ट्रीय सुरक्षा का—सरकार को तथ्य सामने रखने ही होंगे।

अंततः, यह बजट सत्र एक चेतावनी के रूप में दर्ज होगा। यह चेतावनी सरकार के लिए भी है और लोकतंत्र के लिए भी। विपक्ष ने यह संकेत दे दिया है कि वह मुद्दों पर पीछे हटने वाला नहीं है। अब सरकार के सामने विकल्प साफ हैं—या तो वह बहस और जवाबदेही को अपनाए, या फिर चुप्पी और टालमटोल की राजनीति जारी रखे। लेकिन इतिहास गवाह है कि लोकतंत्र में आख़िरी फैसला सदन नहीं, जनता सुनाती है।

भारत-मलेशिया नई कूटनीतिक धुरी

संदीप कुमार

कुआलालंपुर में भारत-मलेशिया ने व्यापक रणनीतिक साझेदारी का नया व्याकरण लिखा है। रक्षा, तकनीक और सांस्कृतिक विरासत का यह संगम हिंद-प्रशांत क्षेत्र में सामरिक स्थिरता का एक नया सूर्योदय है।

कुआलालंपुर की गगनचुंबी इमारतों के साये में जब भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और उनके मलेशियाई समकक्ष अनवर इब्राहिम के बीच संवाद की कड़ियां जुड़ीं, तो वह केवल दो राष्ट्राध्यक्षों की औपचारिक भेंट मात्र नहीं थी। वह हिंद-प्रशांत के सामरिक मानचित्र पर दो ऐसी शक्तियों का महामिलन था, जो अपनी साझा नियति को 'व्यापक रणनीतिक साझेदारी' के सांचे में ढालने के लिए संकल्पित हैं। फरवरी 2026 की इस यात्रा ने न केवल दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत की 'एक्ट ईस्ट' नीति को एक नई ऊर्जा प्रदान की, बल्कि यह भी सिद्ध कर दिया कि बदलती वैश्विक व्यवस्था में नई दिल्ली और कुआलालंपुर के बीच का सेतु अब पहले से कहीं अधिक सुदृढ़ और बहुआयामी हो चुका है। प्रधानमंत्री मोदी की यह तीसरी मलेशिया यात्रा उस समय घटित हुई जब वैश्विक राजनीति में 'आसियान केंद्रीयता' और समुद्री सुरक्षा के प्रश्न सबसे मुखर हैं।

मलेशियाई प्रधानमंत्री अनवर इब्राहिम ने इस विमर्श को 'अत्यंत महत्वपूर्ण और रणनीतिक' की संज्ञा देते हुए उस ऐतिहासिक विरासत को याद किया, जो 1957 से दोनों देशों को एक सूत्र में बांधे हुए है। इस यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि ग्यारह प्रमुख दस्तावेजों का आदान-प्रदान और समझौतों की वह श्रृंखला रही, जिसने रक्षा, तकनीक, संस्कृति और व्यापार के नए व्याकरण लिखे हैं। इन समझौतों में ऑडियो-विजुअल सह-निर्माण से लेकर आपदा प्रबंधन, भ्रष्टाचार निवारण और संयुक्त राष्ट्र शांति सेना में सहयोग जैसे महत्वपूर्ण आयाम शामिल हैं। यह विविधता इस बात का प्रमाण है कि भारत और मलेशिया अब केवल पारंपरिक व्यापार तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे एक ऐसे 'को-सिस्टम' का निर्माण कर रहे हैं जहाँ सुरक्षा और समृद्धि एक-दूसरे की पूरक हैं। विशेष रूप से, दोनों देशों के राष्ट्रीय सुरक्षा परिषदों के बीच सहयोग और आतंकवाद के विरुद्ध 'शून्य सहिष्णुता' का स्पष्ट संदेश—'कोई दोहरा मापदंड नहीं, कोई समझौता नहीं'—इस साझेदारी की सामरिक गहराई को रेखांकित करता है।

इस कूटनीतिक यात्रा का तकनीकी आयाम विशेष रूप से जाज्वल्यमान रहा। प्रधानमंत्री मोदी ने सेमीकंडक्टर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और डिजिटल अर्थव्यवस्था को इस साझेदारी का नया 'ग्रोथ इंजन' बताया। मलेशिया, जो वैश्विक स्तर पर सेमीकंडक्टर निर्यात में छठे स्थान पर है और जिसकी अर्थव्यवस्था में इस क्षेत्र का योगदान लगभग 25 प्रतिशत है, भारत की 'डिजिटल इंडिया' और विनिर्माण महत्त्वाकांक्षाओं के लिए एक अनिवार्य भागीदार बनकर उभरा है। एनपीसीआई और मलेशिया के पे-नेट के बीच सीमा पार भुगतान को लेकर हुआ समझौता डिजिटल संप्रभुता और आर्थिक एकीकरण की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है। यह समझौता न केवल व्यापारिक सुगमता बढ़ाएगा, बल्कि दोनों देशों के आम नागरिकों के बीच वित्तीय लेन-देन को भी एक नई परिभाषा देगा। इसके साथ ही, आयुर्वेद और स्वास्थ्य के क्षेत्र में सहयोग यह दर्शाता है कि भारत अपनी प्राचीन विरासत को आधुनिक तकनीक के साथ जोड़कर वैश्विक कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

सांस्कृतिक और सभ्यतागत संबंधों की ऊष्मा इस यात्रा के हर मोड़ पर महसूस की गई। प्रधानमंत्री मोदी ने तमिल भाषा के प्रति 'साझा प्रेम' को दोनों देशों को जोड़ने वाला एक जीवंत तंतु बताया। मलेशिया की शिक्षा, मीडिया और जनजीवन में तमिल की जीवंत उपस्थिति को स्वीकार करते हुए उन्होंने यूनिवर्सिटी मालाया में 'तिरुवल्लुवर केंद्र' की स्थापना और मलेशियाई नागरिकों के लिए 'तिरुवल्लुवर छात्रवृत्ति' की घोषणा की। यह केवल भाषाई सम्मान नहीं, बल्कि एक 'सॉफ्ट पावर' कूटनीति है जो दिलों को जोड़ती है। कूटनीति के इसी मानवीय पक्ष का विस्तार तब देखने को मिला जब प्रधानमंत्री ने 'इंडियन नेशनल आर्मी' के वयोवृद्ध योद्धा जेयराज राजा राव से भेंट की। नेताजी सुभाष चंद्र बोस और आईएनए के बलिदानों को याद करना उस ऐतिहासिक ऋण की स्वीकृति थी, जिसने भारत की नियति को गढ़ने में दक्षिण-पूर्व एशिया की भूमिका को अमर बना दिया है।

निष्कर्षतः, प्रधानमंत्री मोदी की यह यात्रा भारत-मलेशिया संबंधों के एक नए सूर्योदय की घोषणा है। जहाँ एक ओर रक्षा और समुद्री सुरक्षा के मोर्चे पर दोनों देश हिंद-प्रशांत क्षेत्र में स्थिरता के लंगर के रूप में उभर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर व्यापार और नवाचार के धरातल पर वे एक-दूसरे की क्षमताओं का लाभ उठा रहे हैं। प्रधानमंत्री अनवर इब्राहिम द्वारा स्थानीय मुद्राओं में व्यापार और ऊर्जा व खाद्य सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में सहयोग का विस्तार करने का आह्वान यह संकेत देता है कि यह साझेदारी आने वाले दशकों में वैश्विक आर्थिक विन्यास को प्रभावित करने का सामर्थ्य रखती है। कुआलालंपुर की सड़कों पर बिछाया गया 'रेड कार्पेट' और 'गार्ड ऑफ ऑनर' केवल औपचारिकता नहीं थी, बल्कि एक उभरते हुए नए भारत के प्रति मलेशिया के गहरे विश्वास और साझा भविष्य की आकांक्षा का प्रतिबिंब था। यह यात्रा सिद्ध करती है कि जब प्राचीन सांस्कृतिक जड़ें आधुनिक सामरिक विज़न के साथ मिलती हैं, तो वह 'डिजिटल कुरुक्षेत्र' के इस युग में भी शांति और प्रगति का एक अभेद्य दुर्ग खड़ा कर सकती हैं। ●

आत्मनिर्भर भारत का 'रेयर अर्थ' संकल्प

मनोज कुमार

संगीत के एक पुराने हिट से लेकर आधुनिक तकनीकी युद्ध तक, दुर्लभ मृदा तत्व आज वैश्विक सत्ता-संतुलन का नया आधार बन चुके हैं। चीन के वर्चस्व को चुनौती देने के लिए भारत अब खनिज संप्रभुता की निर्णायक दौड़ में उतर चुका है।

सत्तर के दशक के प्रसिद्ध मोटाउन बैंड 'रेयर अर्थ' का 1969 का वह सुपरहिट गीत 'गेट रेडी' आज दशकों बाद वैश्विक भू-राजनीति के गलियारों में एक नई और गंभीर प्रतिध्वनि के साथ गूँज रहा है। संगीत की दुनिया से निकलकर 'दुर्लभ मृदा तत्व' अब आधुनिक सभ्यता की धमनियों में बहने वाला वह 'नया स्वर्ण' बन चुके हैं, जिसके बिना इक्कीसवीं सदी की तकनीकी कल्पना ही असंभव है। चाहे वह इलेक्ट्रिक वाहनों की रफ्तार हो, पवन चक्कियों के विशाल ब्लेड, स्मार्टफ़ोन की स्क्रीन, पेट्रोलियम शोधन के उत्प्रेरक हों या रक्षा प्रणालियों के लेज़र और बैटरी—इन सत्रह धातुओं का प्रभाव सर्वव्यापी है। वैश्विक प्रौद्योगिकी आपूर्ति श्रृंखला के इस उच्च-दांव वाले कुरुक्षेत्र में, अब भारत के लिए भी 'तैयार' होने का समय आ गया है। यह संघर्ष केवल व्यापार का नहीं, बल्कि चीन के उस एकाधिकार को चुनौती देने का है, जो वर्तमान में विश्व के 90 प्रतिशत REE प्रसंस्करण को अपनी मुट्ठी में कैद किए हुए है। भारत की यह छलांग अपनी आयात निर्भरता की बेड़ियों को काटकर 'खनिज संप्रभुता' की दिशा में एक ऐतिहासिक प्रस्थान है।

अल्गोरिथमिक जंग और चीन का खनिज साम्राज्यवाद

दुर्लभ मृदा तत्व केवल सत्रह धातुओं का समूह नहीं हैं; ये नियोडिमियम, डिस्प्रोसियम और लैंथेनम जैसे वे तत्व हैं जो स्थायी चुम्बकों के निर्माण के लिए अनिवार्य हैं। भारत के लिए इनकी माँग एक विस्फोट की स्थिति में है। 'फेम' योजना के तहत इलेक्ट्रिक वाहनों के लक्ष्य और सेमीकंडक्टर मिशनों ने यह सुनिश्चित कर दिया है कि 2030 तक हमारी आवश्यकताएं दोगुनी हो जाएंगी। वर्ष 2025 में चीन द्वारा लगाए गए निर्यात प्रतिबंधों ने न केवल वैश्विक कीमतों में आग लगा दी, बल्कि भारत के इलेक्ट्रॉनिक्स और ऑटो क्षेत्रों को एक ऐसे संकट के मुहाने पर खड़ा कर दिया, जैसा 2010 में जापान ने महसूस किया था।

चीन ने अप्रैल से अक्टूबर 2025 के बीच चरणों में डिस्प्रोसियम, टेरबियम और यट्रियम जैसे तत्वों पर कड़े नियंत्रण लागू किए। यहाँ तक कि उन उत्पादों के लिए भी अनुमोदन अनिवार्य कर दिया गया जिनमें इन धातुओं की नाममात्र की उपस्थिति (0.1 प्रतिशत) थी। नवंबर और दिसंबर 2025 तक पहुँचते-पहुँचते, बीजिंग ने इन खनिजों के प्रसंस्करण की तकनीक के निर्यात पर भी पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। वित्त वर्ष 2024-25 के आँकड़े बताते हैं कि भारत अपने दुर्लभ मृदा चुम्बकों का 93 प्रतिशत हिस्सा चीन से आयात करता रहा है। इस 'खनिज साम्राज्यवाद' के विरुद्ध भारत का अभियान अब केवल एक आर्थिक नीति नहीं, बल्कि 'आत्मनिर्भर भारत' का सबसे महत्वपूर्ण सामरिक परीक्षण बन चुका है।

राष्ट्रीय खनिज मिशन: आत्मनिर्भरता का नया ब्लूप्रिंट

इस संकट का उत्तर देने के लिए भारत सरकार ने 2024 में 'राष्ट्रीय महत्वपूर्ण खनिज मिशन' का शंखनाद किया। 16,300 करोड़ रुपये के परिव्यय वाला यह मिशन 2030-31 तक 18,000 करोड़ रुपये के निवेश को आकर्षित करने का लक्ष्य रखता है। यह मिशन केवल खनन तक सीमित नहीं है, बल्कि अन्वेषण से लेकर प्रसंस्करण और पुनर्चक्रण तक की पूरी मूल्य श्रृंखला को कवर करता है। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण ने राजस्थान में 35 सहित कुल 195 परियोजनाओं के माध्यम से अन्वेषण को तेज कर दिया है। केरल, ओडिशा और तमिलनाडु के तटीय रेत (मोनाज़ाइट) से लेकर विशाखापत्तनम के अंतर्देशीय स्थलों तक, भारत अपनी छिपी हुई संपदा को टटोल रहा है।

भारत की इस यात्रा की जड़ें 'इंडियन रेयर अर्थ्स लिमिटेड' में निहित हैं, जो 1950 से परमाणु ऊर्जा विभाग के तहत एक सरकारी एकाधिकार रहा है। लंबे समय तक परमाणु ऊर्जा अधिनियम के प्रतिबंधों के कारण इसका उत्पादन थमा रहा, क्योंकि मोनाज़ाइट को एक परमाणु खनिज माना जाता था। लेकिन आज मुंबई स्थित यह मुख्यालय अलुवा (केरल), चवारा और ओस्कॉम (ओडिशा) जैसी अपनी इकाइयों के माध्यम से सालाना 11,200 मीट्रिक टन प्रसंस्करण की क्षमता के साथ भारत का मुख्य योद्धा बनकर उभरा है।

कानूनी सुधार और निजी क्षेत्र का उदय

इतिहास गवाह है कि बिना नीतिगत साहस के कोई भी सामरिक लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। 'खान और खनिज (विकास और विनियमन) संशोधन अधिनियम, 2023' ने लिथियम, नाइओबियम और टाइटेनियम जैसे खनिजों को परमाणु श्रेणी से बाहर कर निजी क्षेत्र के लिए दरवाजे खोल दिए। सितंबर 2025 में पर्यावरण मंत्रालय ने राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में इन परियोजनाओं को सार्वजनिक सुनवाई से छूट देकर कलीयरेंस की प्रक्रिया को 'फास्ट-ट्रैक' कर दिया।

नवंबर 2025 में 73 अरब रुपये की उस योजना को मंजूरी दी गई, जो सात वर्षों में 6,000 मीट्रिक टन स्थायी चुम्बकों के निर्माण का लक्ष्य रखती है। यह केवल एक सब्सिडी नहीं, बल्कि निजी क्षेत्र के जोखिम को कम करने और उन्हें वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करने का एक 'रणनीतिक कवच' है। बजट 2026 इस दिशा में और भी गहरे सुधारों की ओर इशारा करता है, जहाँ 'रेयर अर्थ एक्सप्लोरेशन फंड' और कर रियायतों के माध्यम से एक ऐसा पारिस्थितिकी तंत्र बनाने की

तैयारी है जहाँ भारत केवल कच्चा माल निर्यातक न रहकर मूल्य श्रृंखला का अधिपति बने।

सार्वजनिक और निजी दिग्गजों का सामरिक संगम

इस खनिज महासमर में भारत के सार्वजनिक उपक्रम अपनी पुरानी केंचुली त्याग रहे हैं। कोल इंडिया जैसा जीवाश्म ईंधन दिग्गज अब ऑस्ट्रेलिया, रूस और अर्जेंटीना में आरईई खनन साझेदारी की तलाश कर रहा है। इसकी सहायक कंपनी बीसीसीएल ने अपने ओवरसब्सक्राइब हुए आईपीओ से प्राप्त निधि को दुर्लभ धातुओं में निवेश करने के लिए आरक्षित किया है। गुजरात खनिज विकास निगम भी भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र से तकनीक हस्तांतरण प्राप्त कर अंबाडुंगर परियोजना के माध्यम से सालाना 12,000 टन ऑक्साइड उत्पादन का लक्ष्य लेकर चल रहा है। वहीं 'खनिज विदेश इंडिया लिमिटेड' अर्जेंटीना और ऑस्ट्रेलिया में लिथियम और दुर्लभ तत्वों की सुरक्षा के लिए वैश्विक संपत्तियों का अधिग्रहण कर रहा है।

निजी क्षेत्र में भी हलचल तीव्र है। अडानी समूह ने आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम में 23,000 करोड़ रुपये के निवेश से एक एकीकृत टाइटेनियम और रेयर अर्थ कॉम्प्लेक्स बनाने का प्रस्ताव दिया है, जो 20,000 रोजगार सृजित करने के साथ-साथ चीन पर निर्भरता को न्यूनतम करेगा। वेदांता समूह ने उत्तर प्रदेश में मोनाज़ाइट ब्लॉक हासिल कर अपनी आत्मनिर्भरता की प्रतिबद्धता को दोहराया है। सज्जन जिंदल के नेतृत्व वाला JSW समूह भी 7,280 करोड़ रुपये की चुम्बक पहल के माध्यम से इस क्षेत्र में अपनी धाक जमा रहा है। यहाँ तक कि महिंद्रा एंड महिंद्रा जैसे वाहन निर्माता भी चीन के प्रतिबंधों के बाद फेराइट सामग्री और हल्के दुर्लभ तत्वों जैसे विकल्पों के माध्यम से स्थानीय विनिर्माण की संभावनाएँ तलाश रहे हैं।

फ्रेंडशोरिंग: कूटनीति और खनिज सुरक्षा का नया गठबंधन

भारत आज चीन के विरुद्ध 'फ्रेंडशोरिंग' की नीति अपना रहा है, जिसका अर्थ है—शत्रु देशों के बजाय विश्वसनीय मित्र देशों से आपूर्ति सुनिश्चित करना। प्रधानमंत्री मोदी और अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के बीच फरवरी 2025 में हुआ 'यू.एस.-इंडिया कॉम्पैक्ट' समझौता इसी दिशा में एक मील का पत्थर है। अमेरिकी एक्सिम बैंक महत्वपूर्ण खनिजों के लिए 100 बिलियन डॉलर तक के निवेश की योजना बना रहा है, जिसमें भारत को प्रसंस्करण हब के रूप में देखा जा रहा है।

ऑस्ट्रेलिया के साथ 'क्रिटिकल मिनरल्स इन्वेस्टमेंट पार्टनरशिप' और कनाडा के साथ त्रिपक्षीय समझौते ने भारत की खनिज सुरक्षा को एक अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा कवच प्रदान किया है। जापान भी इस दौड़ में भारत का साथ दे रहा है, जहाँ टोयोटा की सहायक कंपनी 'टोयोट्सु' भारत में चुम्बक निर्माण संयंत्र स्थापित करने पर विचार कर रही है। यह गठबंधन केवल व्यापार के लिए नहीं, बल्कि 'क्वाड' के उस साझा विज़न के लिए है जो हिंद-प्रशांत क्षेत्र को चीन के भू-आर्थिक दबाव से मुक्त रखना चाहता है।

चुनौतियों का हिमालय और भविष्य का क्षितिज

उत्साह के इस सैलाब के बावजूद, भारत के सामने चुनौतियों का एक हिमालय खड़ा है। भारत के पास दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा दुर्लभ मृदा भंडार (8.52 मिलियन टन) है, लेकिन हमारा उत्पादन वैश्विक आपूर्ति का 1 प्रतिशत भी नहीं है। पुरानी बुनियादी संरचना और खनन क्षमता की सीमाएं हमें पीछे खींच रही हैं। इसके अलावा, तटीय रेत के खनन से होने वाला पर्यावरणीय नुकसान, थोरियम कचरे का सुरक्षित निपटान और स्थानीय विरोध जैसी समस्याएँ इस मार्ग की बाधाएं हैं।

सबसे बड़ी कमी 'डाउनस्ट्रीम' सुविधाओं की है। हम अयस्क निकालने में तो कुशल हैं, लेकिन उन्हें शुद्ध करने, मिश्र धातु बनाने और चुम्बक तैयार करने की तकनीक में अभी भी हम शैशवावस्था में हैं। प्रसंस्करण सुविधाओं के निर्माण में 15 साल तक का समय और भारी पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है, जो निवेशकों को डराती है। भारत की माँग 2030 तक 8,220 मीट्रिक टन तक पहुँचने का अनुमान है, जबकि वर्तमान उत्पादन मात्र 2,900 टन है।

इंद्रधनुष के अंत में सोने का घड़ा

भारत का दुर्लभ मृदा तत्वों की ओर यह प्रस्थान महज़ खनन की एक कसरत नहीं है; यह भारत का 'पुनः औद्योगीकरण' है। 56 साल पहले 'रेयर अर्थ' बैंड ने अपने गीत 'बोर्न टू वांडर' में कहा था— 'मुझे अपने सपने का पीछा करना होगा, जैसे नदी समुद्र की ओर बढ़ती है... मुझे इंद्रधनुष को ढूँढना होगा, क्योंकि वह मेरा इंतज़ार कर रहा है।ट आज भारत के लिए वह इंद्रधनुष खनिज सुरक्षा और तकनीकी संप्रभुता के रूप में खड़ा है।'

2030 तक, यदि भारत अपनी खनिज आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लेता है, तो यह न केवल 30 प्रतिशत ईवी पैठ और रक्षा स्वायत्तता को शक्ति प्रदान करेगा, बल्कि 'चीन-प्लस-वन' की रणनीति को एक खोखले नारे से बदलकर एक वैश्विक वास्तविकता बना देगा। दुर्लभ मृदा तत्वों का यह कुरुक्षेत्र अंततः यह तय करेगा कि आने वाले समय में विश्व की तकनीकी नियति बीजिंग के एल्गोरिदम से लिखी जाएगी या नई दिल्ली के संकल्प से। भारत की खनिज संप्रभुता ही उसके भविष्य के विकास की सबसे उज्ज्वल नक्षत्र सिद्ध होगी। ●

आकाशीय संप्रभुता

SJ-100

बनेगा भारत का सारथी?

अनवर हुसैन

भारत-रूस का 'SJ-100' समझौता केवल विमान निर्माण का अनुबंध नहीं, बल्कि पश्चिमी एकाधिकार को चुनौती देती एक सामरिक हुंकार है। तकनीकी संप्रभुता और 'उड़ान' योजना के लक्ष्यों को साधता यह 'नभ-विहंग', क्या भारत को वैश्विक विमानन विनिर्माण का नया शक्ति-केंद्र बना पाएगा? आइए, इस नए औद्योगिक कुरुक्षेत्र का विश्लेषण करें।

इतिहास के पन्नों में भारत और रूस (पूर्ववर्ती सोवियत संघ) का संबंध सदैव रक्षा गलियारों की गूँज और 'मिग' या 'सुखोई' जैसे लड़ाकू विमानों की गर्जना से परिभाषित होता रहा है। किंतु, फरवरी 2026 में हैदराबाद के नीले आकाश के नीचे 'विंग्स इंडिया 2026' के मंच पर जो दृश्य उभरा, वह एक भिन्न भविष्य की ओर संकेत कर रहा था। रूस द्वारा अपने क्षेत्रीय यात्री जेट 'सुपरजेट SJ-100' और टर्बोप्रॉप 'Il-114-300' का अनावरण केवल एक औद्योगिक प्रदर्शन नहीं था, बल्कि यह उस सामरिक साझेदारी का नया व्याकरण था जो अब युद्धभूमि से निकलकर नागरिक उड्डयन के वाणिज्यिक क्षितिज तक विस्तृत हो रही है। हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड और रूस के यूनाइटेड एयरक्राफ्ट कॉर्पोरेशन के बीच SJ-100 के भारत में संभावित निर्माण का समझौता उस 'डिजिटल और औद्योगिक कुरुक्षेत्र' में भारत की बढ़ती धमक का प्रमाण है, जहाँ अब मुकाबला केवल हथियारों का नहीं, बल्कि तकनीक, विनिर्माण और

बाजार पर आधिपत्य का है।

विंग्स इंडिया 2026 का शंखनाद

एशिया के सबसे बड़े नागरिक उड्डयन आयोजन 'विंग्स इंडिया 2026' ने भारत को वैश्विक विमानन विन्यास की धुरी के रूप में प्रस्तुत किया। नागरिक उड्डयन मंत्री राम मोहन नायडू द्वारा इस शो का उद्घाटन और विमानन विनिर्माण को बढ़ावा देने का संकल्प यह स्पष्ट करता है कि सरकार अब विमानों के केवल 'संचालन' से संतुष्ट नहीं है, बल्कि वह 'निर्माण' के क्षेत्र में अपनी संप्रभुता चाहती है। बोइंग 787-9 ड्रीमलाइनर और एयरबस ए321 नियो जैसे पश्चिमी दिग्गजों के बीच रूसी 'नभ-विहंगों'—Il-114-300 और SJ-100—की उपस्थिति एक रणनीतिक संतुलन पैदा कर रही थी।

ये रूसी विमान केवल प्रदर्शनी की वस्तुएं नहीं थे; ये रूसी स्वदेशीकरण की पराकाष्ठा हैं। पश्चिमी प्रतिबंधों की आग में तपकर निकले ये विमान पूरी तरह से रूसी प्रणालियों, घटकों और 'पीडी-8' इंजनों से लैस हैं। रूसी राजदूत डेनिस अलीपोव की उपस्थिति और यूएसी-इंडिया समझौते पर मुहर लगना इस बात की पुष्टि है कि मास्को अब भारत को केवल एक ग्राहक नहीं, बल्कि अपने भविष्य के नागरिक विमानन पारिस्थितिकी तंत्र के एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में देख रहा है।

भारतीय विमानन बाजार

भारत आज विश्व का सबसे तेजी से बढ़ता नागरिक उड्डयन क्षेत्र है। 2025 तक यह दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा हवाई यात्री बाजार बन चुका है, जो राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में 5% का योगदान दे रहा है। 2014 में जहाँ केवल 74 हवाई अड्डे थे, आज उनकी संख्या बढ़कर 160 हो चुकी है। 161.3 मिलियन से अधिक घरेलू यात्रियों

दशकों तक बोइंग और एयरबस की द्वैध-शक्ति के साये में रहने के बाद, भारत अब 'आयातित मेधा' के बजाय 'स्वदेशी मौलिकता' की ओर कदम बढ़ा रहा है। रूस के साथ SJ-100 की साझेदारी महज एक विकल्प नहीं, बल्कि भारत के विशाल घरेलू बाजार को वैश्विक विनिर्माण हब में बदलने की सोची-समझी रणनीति है।

की आवाजाही और इंडिगो व एयर इंडिया जैसी दिग्गज कंपनियों द्वारा आगामी दशक के लिए दिए गए 1000 से अधिक विमानों के ऑर्डर यह बताते हैं कि भारतीय आकाश की प्यास अनंत है।

किंतु विडंबना यह रही है कि इस विशाल बाजार पर दशकों से बोइंग और एयरबस जैसी पश्चिमी शक्तियों का एकाधिकार रहा है। भारत के पास विनिर्माण कौशल है, श्रमशक्ति है और 100% प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुकूल नीतियां हैं, लेकिन 'मौलिक डिजाइन' और 'इंजन तकनीक' के मोर्चे पर हम अब भी आयातित मेधा पर निर्भर हैं। रूस के साथ प्रस्तावित साझेदारी इसी शून्यता को भरने का एक साहसी प्रयास है।

पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण

भारत में परिवहन विमान निर्माण का सपना नया नहीं है, लेकिन इसकी गति अब तीव्र हुई है। एचएएल द्वारा लाइसेंस प्राप्त उत्पादन के तहत बनाए गए 'एवरो' और 'डॉर्नियर' इसके शुरुआती अध्याय थे। आज टाटा समूह इस क्षेत्र में एक 'गेम-चेंजर' बनकर उभरा है। एयरबस C-295 सामरिक सैन्य परिवहन विमान का निर्माण वडोदरा में शुरू होना एक ऐतिहासिक मोड़ है। सितंबर 2026 में जब पहला 'मेड-इन-इंडिया' C-295 बाहर आएगा, तो उसमें 96% स्वदेशी सामग्री होगी। यह परियोजना 125 से अधिक भारतीय सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों को एक ऐसी मूल्य श्रृंखला से जोड़ रही है जो भविष्य के स्वदेशी यात्री विमानों की नींव रखेगी।

इसी क्रम में अडानी डिफेंस एंड एयरोस्पेस का ब्राजील की कंपनी 'एम्ब्रेयर' के साथ समझौता एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम जोड़ता है। यह निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों का वह 'सिनर्जी' है जो भारत को केवल असेंबली लाइन से ऊपर उठाकर एक 'इंटीग्रेटेड एयरोस्पेस इकोसिस्टम' में रूपांतरित करने के लिए तैयार है।

SJ-100 प्रस्ताव

अक्टूबर 2025 में मास्को में हस्ताक्षरित एचएएल-यूएसी समझौता विशेष रूप से 'उड़ान' योजना के तहत क्षेत्रीय हवाई अड्डों को जोड़ने के लिए बनाया गया है। 103 सीटों वाला यह जेट भारत की लघु-दूरी की उड़ानों के लिए एक आदर्श विकल्प है। एचएएल का अनुमान है कि आगामी दशक में भारत को 200 और हिंद महासागर क्षेत्र के देशों को 350 क्षेत्रीय जेट विमानों की आवश्यकता होगी।

यहाँ एक जटिल पहलू पश्चिमी प्रतिबंधों का है। यूएसी वर्तमान में अमेरिका और यूरोपीय संघ के प्रतिबंधों के घेरे में है। लेकिन भारत ने अपनी 'रणनीतिक स्वायत्तता' को अक्षुण्ण रखते हुए स्पष्ट किया है कि वह एकतरफा प्रतिबंधों को स्वीकार नहीं करता। नई दिल्ली का तर्क तार्किक है—जब पश्चिम स्वयं रूस से अरबों डॉलर का सामान खरीद रहा है, तो भारत पर उँगली उठाना केवल 'दोहरा मापदंड' है। भारत के लिए रूस एक 'परखा हुआ मित्र' है जो तकनीक हस्तांतरण में पश्चिमी देशों की तुलना में अधिक उदार रहा है। रूसी तकनीक और भारत की कुशल कार्यशक्ति, सॉफ्टवेयर विशेषज्ञता और निजी क्षेत्र की वित्तीय सुदृढ़ता मिलकर विमानन की एक नई 'वैश्विक सर्वश्रेष्ठ पद्धति' खड़ी कर सकते हैं।

सेवा से स्वायत्तता तक

विमानन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण किंतु उपेक्षित पक्ष है 'रखरखाव, मरम्मत और संचालन' । वर्तमान में भारत की 80-85% एमआरओ आवश्यकताएं विदेशों से पूरी की जाती हैं, जिससे भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा बाहर जाती है। क्रिसिल की रिपोर्ट के अनुसार, उच्च कर और अपर्याप्त बुनियादी ढांचा इस क्षेत्र की बाधाएं रही हैं।

सरकार ने अब इस दिशा में क्रांतिकारी कदम उठाए हैं। एमआरओ सेवाओं पर कर को 18% से घटाकर 5% करना और रॉयल्टी शुल्क को समाप्त करना लागत को 10-20% तक कम कर देगा। नीति आयोग का सुझाव है कि पहले वैश्विक दिग्गजों के साथ संयुक्त उद्यम बनाकर मूल्य श्रृंखला में ऊपर चढ़ा जाए। भारत का लक्ष्य सिंगापुर की तर्ज पर एक अंतरराष्ट्रीय स्तर का एमआरओ हब बनना है। यदि रूस के SJ-100 का निर्माण भारत में होता है, तो इसके साथ ही रूसी-भारतीय संयुक्त एमआरओ केंद्रों का जाल बिछेगा, जो केवल भारत ही नहीं, बल्कि समूचे दक्षिण और पूर्व एशिया के विमानों की सेवा कर सकेंगे।

चुनौतियां और भविष्य की राह

इतने बड़े स्वप्न के मार्ग में चुनौतियां हिमालय सदृश हैं। भारत के पास निर्माण कौशल तो है, लेकिन 'मूल डिजाइन क्षमता' का अब भी अभाव है। हम इंजनों और एवियोनिक्स के लिए आज भी विदेशी साझेदारों के मोहताज हैं।

इसके लिए भारत को 'वैमानिकी विकास एजेंसी' की तर्ज पर एक स्वतंत्र नागरिक विमानन प्राधिकरण की आवश्यकता है, जो सीधे प्रधानमंत्री कार्यालय के अधीन कार्य करे। यह एजेंसी सार्वजनिक और निजी विनिर्माण इकाइयों के बीच समन्वय स्थापित करे और मध्यम-भार वाले सैन्य परिवहन विमानों के साथ-साथ नागरिक यात्री विमानों के विकास को गति दे। भारत को विदेशी मूल उपकरण निर्माताओं के साथ इंजन निर्माण के लिए संयुक्त उद्यमों पर जोर देना होगा, क्योंकि इंजन ही किसी भी विमान का 'हृदय' होता है।

सिलिकॉन और स्टील का नया संतुलन

इक्कीसवीं सदी के इस नए 'औद्योगिक कुरुक्षेत्र' में, जहाँ पश्चिम अब चीन से किनारा कर रहा है और यूरोप में उत्पादन लागत आसमान छू रही है, भारत विमान निर्माण और रखरखाव के लिए सबसे उपयुक्त गंतव्य है। नई दिल्ली की कूटनीतिक कुशलता ने इसे एक ऐसे दुर्लभ स्थान पर खड़ा कर दिया है जहाँ इसके पास पश्चिम का निवेश और रूस की तकनीक, दोनों उपलब्ध हैं।

रूस-भारत SJ-100 परियोजना केवल एक विमान के निर्माण का अनुबंध नहीं है; यह भारत के आत्मनिर्भरता के संकल्प का 'टेक-ऑफ' है। भविष्य के युद्ध और भविष्य की समृद्धि केवल रणभूमि में नहीं, बल्कि डेटा सेंटरों, आरएंडडी प्रयोगशालाओं और एयरोस्पेस फैक्ट्रियों में तय होगी। भारत को अपनी वैधानिक संप्रभुता के साथ-साथ 'तकनीकी संप्रभुता' को सुरक्षित करना होगा। यदि हम अपने स्वयं के डिजाइन, पेटेंट और इंजनों का विकास कर सके, तो वह दिन दूर नहीं जब भारतीय आकाश में भारतीय मेधा से बने विमान उड़ेंगे। रूस के साथ यह साझेदारी उस महान यात्रा का एक अनिवार्य और सामरिक प्रस्थान बिंदु है। यह समय भय का नहीं, बल्कि भविष्य की आँखों में आँखें डालकर अपनी शर्तों पर इतिहास लिखने का है। नभ-स्पर्श के इस महायज्ञ में भारत का विवेक ही उसका सबसे बड़ा पथ-प्रदर्शक होगा। ●

SHANTI
भविष्य का आधार

दिसंबर 2025 का 'शांति अधिनियम' भारत के लिए केवल एक कानूनी सुधार नहीं, बल्कि परमाणु संकोच से परमाणु आत्मविश्वास की ओर महाप्रस्थान है। 'नेट ज़ीरो' के लक्ष्य और एसएमआर तकनीक के संगम से, नई दिल्ली अब वैश्विक परमाणु प्रशासन का नया व्याकरण लिख रही है। क्या यह नीति भारत को ऊर्जा का नया लाइटहाउस बनाएगी?

प्रो. (डॉ)सतीश चंद्र

जब वैश्विक ऊर्जा विमर्श 'नेट ज़ीरो' और जलवायु न्याय की धुरी पर घूम रहा है, तब भारत ने अपनी ऊर्जा सुरक्षा के व्याकरण को मौलिक रूप से बदलने का साहस दिखाया है। हाल ही में विद्युत मंत्रालय द्वारा जारी 'मसौदा राष्ट्रीय विद्युत नीति 2026' केवल एक रणनीतिक दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि यह उस 'शांति' (Sustainable Harnessing and Advancement of Nuclear Energy for Transforming India - SHANTI) अधिनियम की तार्किक परिणति है, जिसे दिसंबर 2025 में संसद की स्वीकृति मिली थी। इतिहास गवाह है कि शीत युद्ध के बाद के कालखंड में परमाणु ऊर्जा वैश्विक

दक्षिण के लिए एक ऐसा 'मृगतृष्णा' बनी रही, जो पहुँच में होते हुए भी जटिल अंतरराष्ट्रीय नियमों, भारी लागत और दायित्वों के चक्रव्यूह में फँसी थी। किंतु, शांति अधिनियम के माध्यम से नई दिल्ली ने न केवल अपने परमाणु भविष्य की सीमाओं को परिभाषित किया है, बल्कि वैश्विक परमाणु प्रशासन में एक नया 'भारतीय प्रतिमान' भी स्थापित किया है। यह नीति 2047 तक 100 गीगावाट परमाणु क्षमता हासिल करने के उस महासंकल्प का ब्लूप्रिंट है, जहाँ राज्य, निजी क्षेत्र और तकनीक का एक अभूतपूर्व संगम दिखाई देता है।

विकासशील देशों में परमाणु ऊर्जा के प्रसार के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा 'परमाणु दायित्व' का अनिश्चित विन्यास रहा है। भारत का पिछला ढांचा—परमाणु ऊर्जा अधिनियम 1962 और नागरिक परमाणु क्षति दायित्व अधिनियम 2010—वैश्विक आपूर्तिकर्ताओं और निवेशकों के लिए एक दुर्गम किला बना हुआ था। 2010 के कानून में आपूर्तिकर्ता पर वैधानिक दायित्व के प्रावधान ने अंतरराष्ट्रीय तकनीक और निजी पूँजी को भारत की दहलीज पर ठिठकने के लिए विवश कर दिया था। शांति अधिनियम ने इस समीकरण को निर्णायक रूप से बदलते हुए आपूर्तिकर्ता के दायित्व को 'वैधानिक' के बजाय 'संविदात्मक' बना दिया है।

यह सुधार भारत को 'परमाणु क्षति के लिए पूरक क्षतिपूर्ति के कन्वेंशन' के वैश्विक मानकों के समकक्ष खड़ा करता है। अधिनियम की धारा 13 के तहत ऑपरेटर के दायित्व को 300 मिलियन विशेष आहरण अधिकार - जो लगभग 430 मिलियन डॉलर के बराबर है—पर सीमित करना और उससे ऊपर के किसी भी अवशिष्ट दायित्व को 'संप्रभु बैकस्टॉप' के रूप में केंद्र सरकार द्वारा वहन करना, निवेशकों के लिए एक पारदर्शी और पूर्वानुमानित वातावरण निर्मित करता है। यह केवल एक कानूनी संशोधन नहीं है, बल्कि उन देशों—जैसे बांग्लादेश, घाना और वियतनाम—के लिए एक वैधानिक खाका भी है जो परमाणु ऊर्जा की आकांक्षा तो रखते हैं लेकिन वित्त पोषण और संप्रभु गारंटी के बोझ तले दबे हैं। भारत ने अपनी इस 'कानूनी प्रयोगशाला' के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि परमाणु ऊर्जा को वैश्विक रूप से संरेखित और विकास-संवेदी नियमों के तहत संचालित किया जा सकता है।

वैश्विक दक्षिण के लिए परमाणु ऊर्जा की दुविधा हमेशा से 'पैमाने' की रही है। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में प्रचलित विशालकाय गीगावाट-स्तर के रिएक्टर उन विकासशील देशों के लिए अनुपयुक्त रहे हैं जिनके ग्रिड कमजोर हैं और सार्वजनिक वित्त सीमित है। अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी का अनुमान है कि

अगले तीन वर्षों में वैश्विक बिजली की मांग में 85 प्रतिशत की वृद्धि उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं से आएगी। ऐसे में 1,000 मेगावाट के उन विशाल रिएक्टरों की प्रतीक्षा करना, जिन्हें बनाने में 15 वर्ष और 28 बिलियन डॉलर तक की लागत आती है, एक अव्यावहारिक विकल्प बन चुका था।

शांति अधिनियम और नई विद्युत नीति ने इस मिसमैच को पहचानते हुए 'लघु मॉड्यूलर रिएक्टर' और 'भारत स्मॉल रिएक्टर्स' को अपनी रणनीति के केंद्र में रखा है। रूस के 'अकादमिक लोमोनोसोव' जैसे तैरते हुए परमाणु संयंत्रों की सफलता ने यह स्पष्ट कर दिया है कि छोटे रिएक्टर न केवल लचीले होते हैं, बल्कि वे सुदूर औद्योगिक और खनन क्षेत्रों के कमजोर ग्रिडों के लिए संजीवनी का कार्य कर सकते हैं। भारत की रणनीति 2033 तक कम से कम पांच स्वदेशी रूप से डिजाइन किए गए SMRs को धरातल पर उतारने की है, जिसके लिए 2025-26 के संघीय बजट में 2.1 बिलियन डॉलर का विशेष प्रावधान किया गया है। यह 'मूनशॉट' भारत को एक ऐसी स्थिति में ले जाएगा जहाँ परमाणु ऊर्जा 'मोनोलिथिक' (अखंड) होने के बजाय 'स्केलेबल' और 'फेज्ड' (चरणबद्ध) होगी, जो सौर और पवन ऊर्जा के साथ एक मज़बूत 'फर्म बेसलोड' के रूप में कार्य करेगी।

यद्यपि शांति अधिनियम एक भारतीय कानून है, किंतु इसकी अंतरराष्ट्रीय प्रासंगिकता भारत की परमाणु साझेदारियों, विशेषकर

परमाणु ऊर्जा का यह नया विन्यास केवल बिजली की आपूर्ति नहीं, बल्कि भू-राजनीतिक बिसात पर भारत की संप्रभुता का वह दांव है, जो पश्चिम के तकनीकी एकाधिकार को तोड़कर 'ग्लोबल साउथ' का नेतृत्व करने की क्षमता रखता है।

रूस के साथ उसके संबंधों से अविभाज्य है। ऐतिहासिक रूप से रूस एकमात्र ऐसा बाहरी अभिनेता रहा है जो भारत के पुराने और कठिन नियमों के भीतर भी संचालन करने में सक्षम था, जैसा कि कुडनकुलम परमाणु ऊर्जा संयंत्र की निरंतरता से स्पष्ट है। हाल ही में गोवा में आयोजित 'इंडिया एनर्जी वीक' के दौरान रोसाटॉम के प्रतिनिधियों ने शांति अधिनियम का स्वागत करते हुए इसे 'मेक इन इंडिया' के लिए एक महान अवसर बताया है।

रूसी मॉडल, जिसमें राज्य समर्थित वित्त पोषण, दीर्घकालिक ईंधन आपूर्ति और पूर्ण जीवन-चक्र सहायता शामिल है, वैश्विक दक्षिण के कई प्रोजेक्ट्स (जैसे बांग्लादेश का रूपपुर संयंत्र) का आधार है। भारत इस मॉडल में 'नियामकीय विश्वसनीयता' और 'मानव पूँजी' का तड़का लगाता है। आईएईए के साथ अपने भारत-विशिष्ट सुरक्षा उपायों के समझौते के तहत, नई दिल्ली ने अपनी 35 नागरिक सुविधाओं को अंतरराष्ट्रीय निरीक्षण के लिए

खोल दिया है, जो वैश्विक स्तर पर भारतीय नियामक व्यवस्था में विश्वास को प्रगाढ़ करता है। दशकों से प्रेशराइज्ड हेवी-वॉटर रिएक्टरों के सफल संचालन ने भारत में अनुभवी इंजीनियरों और तकनीशियनों का एक ऐसा विशाल पूल तैयार किया है, जिसकी मेधा अब निर्यात की जा रही है। 2024 में यूएई के 'बराहक' संयंत्र के संचालन और रखरखाव के लिए हुआ समझौता इसी तकनीकी निर्यात का प्रारंभ है।

किंतु, शांति अधिनियम केवल संभावनाओं का द्वार नहीं है, बल्कि यह उत्तरदायित्वों का एक भारी बोझ भी है। ऑपरेटर के दायित्व को सीमित करने और शेष भार संप्रभु (अर्थात करदाता) पर डालने का अर्थ है कि किसी भी बड़ी आपदा की स्थिति में आर्थिक बोझ अंततः जनता की पीठ पर होगा। फुकुशिमा जैसी घटनाओं के बाद का अनुभव बताता है कि मुआवज़े और सफाई का बिल सैकड़ों अरब डॉलर तक पहुँच सकता है। अतः भारत के लिए असली परीक्षा यह होगी कि क्या वह इस निवेश-अनुकूल वातावरण के साथ-साथ अपने नियामक तंत्र को इतना सख्त बना सकता है कि 'शून्य-त्रुटि' की संस्कृति विकसित हो सके।

शांति अधिनियम को भारत के परमाणु क्षेत्र में एक अंतिम बिंदु नहीं, बल्कि क्रमिक सुधारों के पहले कदम के रूप में देखा जाना चाहिए। यह कानून भारत को 'न्यूक्लियर पैरैया' के इतिहास से निकालकर एक 'न्यूक्लियर लाइटहाउस' के रूप में स्थापित करने की क्षमता रखता है।

2026 की यह विद्युत नीति और शांति अधिनियम का समन्वय यह उद्घोष है कि भारत अब ऊर्जा के क्षेत्र में 'फॉलोअर' नहीं बल्कि 'ट्रेलब्लेज़र' बनने की ओर अग्रसर है। एक ऐसी दुनिया में जहाँ निर्णय लेने की गति ही एकमात्र प्रतिस्पर्धा है, भारत ने अपनी परमाणु संप्रभुता को आधुनिक बाजार के अर्थशास्त्र और अंतरराष्ट्रीय कानूनी मानकों के साथ संरेखित कर दिया है। यह नीति केवल गीगावाट और मेगावाट की गणना नहीं है, बल्कि यह भविष्य के भारत की उस 'ऊर्जा संक्रांति' का शंखनाद है जहाँ परमाणु ऊर्जा केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि विकसित भारत की अनिवार्य नींव होगी।

भविष्य के इतिहासकार शायद शांति अधिनियम को उस क्षण के रूप में दर्ज करेंगे जब भारत ने 'परमाणु संकोच' का त्याग कर 'परमाणु आत्मविश्वास' को अंगीकार किया था। यदि हम अपने एसएमआर को समय पर तैनात कर सके और रूस जैसी शक्तियों के साथ मिलकर वैश्विक दक्षिण को एक व्यवहार्य ऊर्जा मॉडल दे सके, तो भारत का यह 'शांति' प्रयास वैश्विक ऊर्जा कुरुक्षेत्र में एक निर्णायक और प्रकाशमान अध्याय सिद्ध होगा। यह समय न केवल रिएक्टरों के निर्माण का है, बल्कि उस 'विवेक' को संस्थागत बनाने का भी है जो तकनीक को मानवता के सुरक्षित और समृद्ध भविष्य का दास बना सके। ●

साइना नेहवाल

जिद, युग, विरासत

चीनी एकाधिकार की दीवारें ढहाने वाली साइना नेहवाल का संन्यास एक युग का समापन है। उनकी विरासत केवल पदक नहीं, बल्कि भारतीय बैडमिंटन का आत्मविश्वास है।

> मशाल जलाकर विदा हुआ वह योद्धा, जिसने भारत को विश्व-शिखर पर अपनी शर्तों पर जीना सिखाया।

सत्य सदैव ब्यूरो

भारतीय बैडमिंटन के कालखंड को यदि किसी एक बिंदु पर विभाजित किया जाए, तो वह विभाजक रेखा निसंदेह साइना नेहवाल के नाम से पहचानी जाएगी। एक समय वह था जब भारतीय खिलाड़ी अंतरराष्ट्रीय कोर्ट पर केवल अपनी उपस्थिति दर्ज कराने और अनुभव प्राप्त करने की औपचारिकता पूरी करने जाते थे। फिर वह युग आया जब दुनिया की महाशक्तियां, विशेषकर चीनी साम्राज्य के अजेय माने जाने वाले खिलाड़ी, भारत की चुनौती से भयाक्रांत होने लगे। इस वैश्विक खौफ और भारतीय आत्मविश्वास के पुनर्जागरण का नाम है—साइना नेहवाल। हाल ही में जब उन्होंने अपने दो दशक लंबे और दैदीप्यमान करियर को विराम देने का निर्णय लिया, तो यह केवल एक एथलीट का कोर्ट से हटना नहीं था, बल्कि उस 'रणनीतिक जिद' का थम जाना भी था, जिसने दशकों से स्थापित चीनी एकाधिकार की दीवारों को ढहाने का साहस किया था। घुटने की असहनीय पीड़ा और शारीरिक सीमाओं के बीच लिया गया यह फैसला उस सत्यनिष्ठा का प्रतीक है, जिसे साइना ने हमेशा अपने खेल से ऊपर रखा। उनके लिए कोर्ट पर उतरना केवल एक मैच खेलना नहीं, बल्कि राष्ट्र की आकांक्षाओं का वहन करना था; और जब उन्हें लगा कि वे अपना शत-प्रतिशत योगदान देने में असमर्थ हैं, तो उन्होंने एक गरिमापूर्ण विदाई चुनना ही श्रेष्ठ समझा। यह फैसला किसी हार का स्वीकारोक्ति नहीं, बल्कि एक योद्धा का वह विवेक है जो जानता है कि कब तलवार म्यान में रखनी है।

सांस्कृतिक जड़ें और नियति का प्रवास

बैडमिंटन की दुनिया में भारत के इस अभूतपूर्व उत्कर्ष की पटकथा हरियाणा के एक साधारण से मध्यमवर्गीय घर में लिखी गई थी। साइना का खेल से नाता कोई संयोग नहीं, बल्कि एक विरासत थी। उनकी माता, उषा रानी नेहवाल, स्वयं एक राज्य स्तरीय बैडमिंटन खिलाड़ी थीं, जिनकी आँखों में कभी राष्ट्रीय चैंपियन बनने का अधूरा स्वप्न पलता था। उनके पिता, हरवीर सिंह, विश्वविद्यालय स्तर के खिलाड़ी रहे थे। इस प्रकार, बैडमिंटन साइना की धमनियों में रक्त बनकर प्रवाहित हो रहा था। किंतु, नियति का असली खेल तब शुरू हुआ जब पिता की नौकरी के सिलसिले में यह परिवार हरियाणा की मिट्टी छोड़कर हैदराबाद के दक्कनी पठार पर पहुँचा। उस समय किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि उत्तर से दक्षिण तक का यह प्रवास भारतीय खेल इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण 'रणनीतिक विन्यास' सिद्ध होगा। हरवीर सिंह ने अपनी बेटी के स्वप्न को हकीकत में बदलने के लिए अपनी जीवन भर की जमा-पूंजी और सुख-सुविधाओं का बलिदान कर दिया। वह एक ऐसा दौर था जब नन्हीं साइना के लिए स्कूल की पढ़ाई और घंटों का कठोर अभ्यास एक ही सिक्के के दो पहलू बन गए थे। हैदराबाद की उन तपती दोपहरियों में, साइना ने केवल तकनीक नहीं सीखी, बल्कि उस अनुशासन का पाठ पढ़ा जो आगे चलकर उनके विश्व शिखर तक पहुँचने का आधार बना।

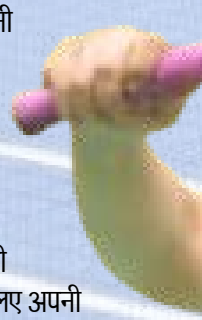

मेधा और मार्गदर्शन का संगम

2004 का वर्ष साइना के जीवन में एक 'टर्निंग पॉइंट' था, जब वे दिग्गज खिलाड़ी और द्रोणाचार्य पुरस्कार विजेता कोच पुलेला गोपीचंद के मार्गदर्शन में आईं। गोपीचंद ने साइना के भीतर छिपी उस 'कच्ची धातु' को पहचाना जिसे

तराशकर एक 'स्वर्ण पदक' बनाया जा सकता था। राष्ट्रीय जूनियर चैंपियनशिप में उनकी जीत ने यह उद्घोष कर दिया था कि भारतीय बैडमिंटन के आकाश में एक नया नक्षत्र उदय होने के लिए छटपटा रहा है। अंतरराष्ट्रीय पटल पर उनका उदय किसी ज्वालामुखी के विस्फोट जैसा था। 2006 के राष्ट्रमंडल खेलों के टीम इवेंट में जीते गए कांस्य पदक ने दुनिया को यह संदेश दिया कि भारत अब केवल प्रतिभागी नहीं, बल्कि एक दावेदार के रूप में खड़ा है। 2008 के यूथ कॉमनवेल्थ गेम्स में स्वर्ण पदक जीतना केवल एक पदक की प्राप्ति नहीं थी, बल्कि यह भारतीय बैडमिंटन के सामूहिक आत्मविश्वास की बहाली का क्षण था। इसके बाद बीजिंग ओलंपिक में क्वार्टर फाइनल तक का सफर तय कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वे विश्व के श्रेष्ठतम खिलाड़ियों की आँखों में आँखें डालकर बात करने का माद्दा रखती हैं। यद्यपि वे बीजिंग में पदक से कुछ कदम दूर रह गईं, लेकिन उस 'मधुर असफलता' ने उनके भीतर एक ऐसी भूख पैदा की, जिसने 2012 के लंदन ओलंपिक में इतिहास रचने की आधारशिला रखी।

लंदन का महाप्रकाश और चीनी दीवार का ढहना

लंदन ओलंपिक की वह जीत भारतीय बैडमिंटन के लिए एक 'एपिफनी' (साक्षात्कार) जैसा क्षण था। साइना ने कांस्य पदक जीतकर न केवल हर भारतीय का मस्तक गर्व से ऊँचा किया, बल्कि उन्होंने उस मनोवैज्ञानिक अवरोध को भी तोड़ दिया जो भारतीय खिलाड़ियों को वैश्विक मंच पर पदक जीतने से रोकता था।

इसके बाद 2015 और 2017 की विश्व चैंपियनशिप में उनके द्वारा जीते गए रजत और कांस्य पदक उनकी निरंतरता और श्रेष्ठता की गवाही देते रहे। आंकड़ों के चश्मे से देखें तो साइना का करियर किसी भी वैश्विक एथलीट के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकता है। उनके नाम दर्ज 24 अंतरराष्ट्रीय खिताब और 10 सुपर सीरीज खिताब उनके वर्चस्व की वह कहानी कहते हैं जो सदियों तक सुनाई जाएगी। वे प्रकाश पादुकोण के बाद विश्व रैंकिंग में नंबर एक के पायदान पर पहुँचने वाली दूसरी भारतीय और पहली भारतीय महिला बनीं। यह उपलब्धि इसलिए भी असाधारण थी क्योंकि उस दौर में महिला बैडमिंटन पर चीन का लौह-आवरण था। वांग यिहान और वांग शिक्सियान जैसी चीनी खिलाड़ियों को हराना उस समय एक असंभव कार्य माना जाता था, जैसे किसी अभेद्य दुर्ग को जीतना हो। किंतु साइना ने अपनी शारीरिक क्षमता, अदम्य साहस और मानसिक दृढ़ता से इस धारणा को समूल नष्ट कर दिया। उन्होंने विश्व को यह दिखाया कि यदि तकनीक के साथ स्टेमिना का सही संगम हो, तो किसी भी वैश्विक वर्चस्व को चुनौती दी जा सकती है।

आक्रामकता और मानसिक कुरुक्षेत्र

साइना की खेल शैली में एक खास तरह का आक्रामक तेवर था, जो उन्हें उनके समकालीनों से अलग खड़ा करता था। वे कोर्ट पर कभी हार नहीं मानती थीं; उनका खेल अंतिम अंक तक चलने वाला एक ऐसा युद्ध था जिसमें समर्पण के लिए कोई स्थान नहीं था। उनकी फिटनेस एक समय पूरे विश्व में शोध का विषय थी। वे लंबी और थका देने वाली रैलियों में विपक्षी खिलाड़ी के धैर्य की परीक्षा लेने में माहिर थीं। वर्ष 2010 उनके करियर का वह 'स्वर्णिम मध्याह्न' था, जब उन्होंने लगातार तीन अंतरराष्ट्रीय खिताब जीतकर दुनिया को स्तब्ध कर दिया था। इसी वर्ष उन्होंने भारत की धरती पर राष्ट्रमंडल खेलों में स्वर्ण पदक जीतकर अपनी लोकप्रियता को एक जन-आंदोलन में बदल दिया। भारत सरकार ने उनके इस विराट योगदान को पहचानते हुए उन्हें खेल रत्न, पद्म श्री और पद्म भूषण जैसे सर्वोच्च नागरिक सम्मानों से अलंकृत किया, जो उनके उत्कृष्ट खेल और राष्ट्र के प्रति उनके समर्पण पर एक आधिकारिक मुहर थी।

भविष्य का आह्वान

साइना नेहवाल का संन्यास केवल एक करियर का अंत नहीं है, बल्कि एक मानक की स्थापना है। उन्होंने सिद्ध किया कि पदक केवल धातु के टुकड़े नहीं होते, वे एक सभ्यता के आत्मविश्वास की गूँज होते हैं। आज जब वे कोर्ट से विदा ले रही हैं, तो भारतीय खेल प्रेमियों की आँखों में नमी नहीं, बल्कि एक गौरवपूर्ण मुस्कान होनी चाहिए। साइना ने अपना काम कर दिया है—उन्होंने मशाल जला दी है। साइना नेहवाल- एक खिलाड़ी, एक जिद, एक युग और एक अनंत प्रेरणा।

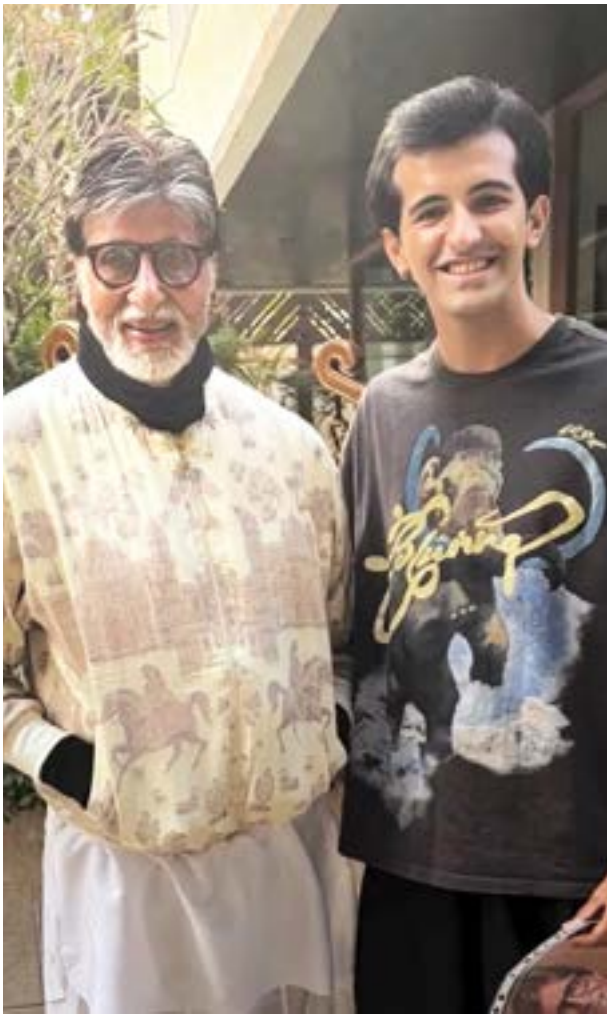

बिग बी का संडे सरप्राइज़

अमिताभ बच्चन की Sunday Darshan वीडियो ने सोशल मीडिया पर ज़बरदस्त धूम मचा दी है। हर रविवार की तरह जलसा के बाहर खड़े बिग बी, लेकिन इस बार कहानी में ट्विस्ट था। पड़ोसी का वीडियो वायरल होते ही बच्चन साहब ने उन्हें सीधे अपने घर बुला लिया। कैमरे बंद, बातचीत चालू और फैंस इमोशनल हो गए। लोग कह रहे हैं—इतने बड़े स्टार होकर भी ऐसा अपनापन! इस वायरल मोमेंट ने एक बार फिर साबित कर दिया कि अमिताभ बच्चन सिर्फ पर्दे के महानायक नहीं, असल ज़िंदगी में भी उतने ही दिलदार हैं। ●

तीनों खान, तीन अंदाज़

बॉलीवुड की चहेती रानी मुखर्जी ने हाल ही में तीनों खान पर ऐसा खुलासा किया कि गॉसिप गलियारों में हलचल मच गई। रानी के मुताबिक आमिर खान सेट पर एकदम "सीरियस स्टूडेंट" होते हैं—स्क्रिप्ट, शॉट और परफेक्शन से कोई समझौता नहीं। शाहरुख खान को उन्होंने "सेंसिटिव और इमोशनल आर्टिस्ट" बताया, जो हर सीन को दिल से जीते हैं और सह-कलाकारों का खास ख्याल रखते हैं। वहीं सलमान खान का अंदाज़ बिल्कुल अलग है—"कैज़ुअल, मस्त और बिना तनाव के काम करने वाले।" रानी ने मुस्कुराते हुए कहा कि तीनों के साथ काम करना तीन अलग-अलग फिल्म स्कूल जैसा अनुभव है। फैंस अब कह रहे हैं—खान तो खान हैं, पर हर एक का स्वैग अलग है! ●

WEBSOFY
work is worship

Your complete IT & Digital Solution Partner

Our Expertise

- Website Design & Development
- E-Commerce & Mobile Apps
- Digital Marketing (SEO, SMM, PPC)
- Cloud Hosting & IT Solutions
- Custom Software Development

Why Websofy?

- ✔ Modern, Responsive Designes
- ✔ Secure & Scalable Technology
- ✔ On-Time Project Delivery
- ✔ 24x7 Client Support
- ✔ Affordable and High-Quality

Transforming Ideas into Digital Reality.

Biometric

CCTV Services

Audio/Video Solutions

Network Security

Empanelled with UP Electronics

GeM Government e Marketplace

Contact us for more information

8953777346, 9250687597

9335785354, 73099 79797

info@websofy.com

www.websofy.com

Innovating for Better Health

Trusted Manufaturer of Health Monitoring Systems

Vantilators, Medical Equipments & Advance Nursing Training Manikins

www.krishnameditech.in

info@krishnameditech.in

+91 99961 12301